मुकुन्दमाला

एवं अन्य

स्तोत्र-रत्न

(कैवल्योपनिषद् सहित)

सम्पादक एवं अनुवादक
जानकीनाथ कौल 'कमल'

श्रीरामकृष्ण आश्रम,
श्रीनगर-कश्मीर

मुकुन्दमाला

एवं अन्य

स्तोत्र-रत्न

(कैवल्योपनिषद् सहित)

मुकुन्दमाला

एवं अन्य

स्तोत्र-रत्न

(कैवल्योपनिषद् सहित)

सम्पादक एवं अनुवादक
जानकीनाथ कौल 'कमल'

श्रीरामकृष्ण आश्रम,
श्रीनगर-कश्मीर

प्रथम संस्करण : 1963

द्वितीय संस्करण : 1977

तृतीय संस्करण : 1994

चतुर्थ संस्करण : 2005

ISBN : 81-900842-0-8

श्रीरामकृष्ण आश्रम

शिवालय, करण नगर, श्रीनगर-190010 (काश्मीर)

प्राप्तिस्थान :

श्रीरामकृष्ण मिशन, उदयवाला, बोडी, जम्मू (जम्मू व काश्मीर)
ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, 2-महेन्द्र नगर, कनाल रोड, जम्मू-180002 (जम्मू व काश्मीर)
रामकृष्ण मिशन, रामकृष्ण आश्रम मार्ग, नई दिल्ली-110055

मूल्य रु० 25.00

ब्रजनाथ कौल, सचिव, श्री रामकृष्ण आश्रम, शिवालय, करण नगर, श्रीनगर-190010 (काश्मीर) द्वारा प्रकाशित तथा अमर प्रिंटिंग प्रैस, 8/25, विजय नगर, दिल्ली-110009 द्वारा मुद्रित

विषय सूची

प्रकाशकीय

हमें हर्ष है कि 'मुकुन्दमाला' जैसे अनुपम भक्तिशास्त्र के अब तक कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं। इससे प्रमाणित होता है कि भक्तजनों ने इस सुन्दर भक्ति-प्रेरक ग्रन्थ को खूब अपनाया है। इसकी माँग और भी बढ़ती रही। अस्तु, अब श्रीरामकृष्ण आश्रम श्रीनगर इसका संवर्द्धित संस्करण भक्तजनों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

पुस्तक की प्रस्तावना मनन करने योग्य है। भगवान् विष्णु, भगवान् शंकर तथा पराम्बा भगवती त्रिपुरसुन्दरी के स्तोत्रों के अतिरिक्त इस संस्करण में वेद द्वारा निर्दिष्ट 'ब्राह्मीविद्या' (विश्लेष्णात्मक अनुवाद सहित) तथा 'उपनिषद्पाठ' जोड़ दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त नारायणस्तुति 'वन्देचरणारविन्दम्', उपमन्युकृत 'शिवस्तोत्र' तथा 'कैवल्योपनिषद्' भी पुस्तक में सानुवाद दिए गए हैं। आशा है भक्तजनों के नित्य पाठ में ज्ञानवर्धक होने से यह प्रयत्न लाभकारी सिद्ध होगा।

हम दिवंगत पण्डित जानकीनाथ कौल 'कमल' के सफल प्रयास को सराहते हैं जिन्होंने कठिन परिस्थितियों में भी हमारे 'संस्कृति-स्तम्भ' को सहर्ष चलाकर कश्मीर की सांस्कृतिक धरोहर को अपनी विश्लेष्णात्मक टीकाओं द्वारा सुरक्षित रखा। उनका 'भवानीनामसहस्रस्तुतिः' का आङ्ग्लानुवाद पहले प्रकाशित किया गया है जिसका विद्वज्जन समाज ने आह्लादपूर्ण आदर किया। उनकी

'पञ्चस्तवी' तथा 'इन्द्राणी स्तोत्र' की टीकाएं भी अंग्रेज़ी भाषा में छप चुकी हैं। इसी कड़ी की प्रथम पुस्तक 'मुकुन्दमाला एवं अन्य स्तोत्ररत्न' का यह अब चौथा संस्करण है।

श्रीनगर, **ब्रजनाथ कौल**

अक्तूबर १५, २००५

चौथा संस्करण

मुकुन्दमाला का पहला-दूसरा तथा तीसरा संस्करण समाप्त होने के साथ ही इस भक्ति-भाव पूर्ण पुस्तिका की माँग बराबर जारी रही। अतः कई वर्षों से इसके पुनः छपवाने का विचार चलता रहा। माँग को पूरा करने में आर्थिक कठिनाइयों और बढ़ते हुए दामों के कारण विलम्ब अवश्य हुआ। इसके लिए भक्तजनों से क्षमा-प्रार्थी हूँ। अब इस ग्रन्थ-रत्न को पुनरवलोकित रूप में जनता के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। परिशिष्ट (क) में भक्तजन हितार्थ कुछ और स्तुतियां दी गई हैं जिनके लिए कई मित्रों ने आग्रह किया था। परिशिष्ट (ख) में अलौकिक शिवस्तुति, नारायण स्तुति 'वन्दे चरणारविन्दम्', उपमन्युकृत शिवस्तोत्रम्, कैवल्योपनिषद्, ब्राह्मी विद्या और उपनिषद् पाठ जोड़ दिए गये हैं।

संग्रहस्तोत्र भक्ति-ज्ञान सम्पन्न सर्वप्रिय स्तोत्र है। इसके श्लोकों का अनुवाद कश्मीरी भाषा में श्री दामोदर नेहरु ने सुमधुर वाणी में किया है, जिसका संशोधन मैंने किया और शैवाचार्य महामहिम श्री स्वामी लक्ष्मण जू से अनुमोदन प्राप्त कर इस संस्करण में दिया है। भगवान् शंकर, भगवान् विष्णु और भगवती के रूपों की दूसरी स्तुतियां जो विशेषकर कश्मीरी जनता में सदा से प्रचलित रही हैं

सरल हिन्दी टीका सहित भी दी गई हैं ताकि देश की नैय्या को आगे ले जाने वाला और भारतीय संस्कृति का रक्षक युवक-समाज (युवा-पीढ़ी) अधिक लाभ उठा सके। मुकुन्दमाला के श्लोकों के अर्थ तथा सारांश पूर्व संस्करण के अनुसार इन्दुमती (कौल) गंजू लिखित ही हैं।

राजा कुलशेखर का जीवन परिचय

मुकुन्दमाला का यह अनुपम ग्रन्थ दसवीं शताब्दी के आस-पास आचार्य रामानुज से प्रेरित वैष्णव-धर्म के अनुयायी परम भक्त तथा दार्शनिक राजर्षि कुलशेखर द्वारा निर्मित हुआ है। कुलशेखर अलवार का जन्म १०७६ ई० में हुआ बताया जाता है। यद्यपि इनके जीवन के बारे में बहुत कम पता चलता है तथापि परम्परागत जनश्रुति और अन्य प्रतियों द्वारा जो कुछ सुनने और पढ़ने को मिला उसका उल्लेख करना यहाँ असमीचीन न होगा।

इस भव्य पुरुष का बालपन प्रखर बुद्धि युक्त और उज्ज्वल रहा होगा। इनके पिता जो केरल देश के राजाओं में से एक हुए हैं, इनके बुद्धि कौशल और उन्नति से इतने प्रभावित हुए कि अपने जीवन काल में ही उन्होंने युवा कुलशेखर का राज्याभिषेक किया। जहाँ कुलशेखर एक प्रसिद्ध योद्धा थे वहाँ इनकी रुचि दर्शन की ओर ही सदा रही। परिणाम यह हुआ कि यह तत्कालीन वैष्णव-धर्म के प्रभाव से प्रभावित हुए। इस कारण लौकिक जीवन से उपरत होकर वैष्णव-धर्म सर्व-सहायक तथा सर्व-सहमत मत बन गया था जिसके फलस्वरूप हरिजनों सहित सब जातियों के लोग इसमें सम्मिलित हुए।

मुकुन्दमाला के अन्तिम श्लोक (कवि परिचय) से पता चलता है कि राजा कुलशेखर के दो प्रिय मित्र थे जिनसे उनको इन श्लोकों

के काव्य सौन्दर्य और दर्शन-ज्ञान में प्रेरणा मिली होगी, उनके नामों के बारे में कश्मीर की प्रतियों में उल्लेख नहीं है। इस श्लोक की पहली दो पंक्तियां इस प्रकार हैं:-

यस्य प्रियौ श्रुतिधरौ रविलोकगीतौ
मित्रे द्विजन्म परिवार शिवावभूताम्।

"जिस (राजा) के प्रिय और श्रुति-पुराण के ज्ञाता दो मित्र, जिनका यश सूर्यलोक तक व्याप्त था, ब्राह्मण परिवार में कल्याण रूप ही पैदा हुए थे।"

परन्तु कश्मीर के ब्रह्मलीन श्री स्वामी माधवानन्द सरस्वती द्वारा अनुवादित (पैंतालीस वर्ष पूर्व लाहौर में छपी) प्रति में दूसरी पंक्ति का अर्थ इस प्रकार मिलता है:-

"द्विजन्म परिवार और शिव नाम वाले मन्त्रिवर थे।"

"डॉ० राजारमण्ण द्वारा अंग्रज़ी में अनुवादित प्रति[1] में इन दो पंक्तियों का पाठान्तर इस प्रकार मिला है:-

यस्य प्रियौ श्रुतिधरौ कविलोकवीरौ
मित्रे द्विजन्मवर पद्मशरावभूताम्।

यहाँ "कविलोकवीरौ" का अर्थ होगा-जो कविलोक अर्थात् काव्य सौष्ठव में वीर अर्थात् चतुर (तीक्ष्ण बुद्धि) थे।

---

1. Mukundamālā of Kulshekhar Alwar with the Sanskrit Text and English translataion by Dr. Raja Ramanna Chairman, Babha Atomic Research Centre Bombay--c.f. Bhavan's Journal Oct.-Nov.. 1974

इन दो मित्रों के नाम यहाँ 'द्विजन्मवर' और पद्मशर' मिलते हैं जिनके नाम अंग्रेज़ी अनुवाद में संक्षेप से "वर" और "पद्म" दिए हैं।

जो कुछ भी हो, परन्तु कहा जाता है कि राजा के दो मन्त्री श्रुतियों के ज्ञाता, तथा दार्शनिक थे। क्योंकि राजा को इनसे प्रेरणा और सत्संग मिलता रहा होगा, अतः इन्हें वह मित्र भी माने बैठे थे। कहते हैं कि इन्हीं दो मन्त्रिवरों से राजा कुलशेखर को प्रेरणा और ख्याति मिली थी।

मेरे मित्रवर्य श्री श्यामलाल कौल (पुरुषयार) से ज्ञात हुआ है कि १९३०-३१ में मुकुन्दमाला का अध्ययन करते समय उनको अपने गुरु महाराज श्री स्वामी नन्दलाल जी (बड़गाम काश्मीर) ने भूमिका के रूप में कहा था कि राजा कुलशेखर के दो श्रोत्रिय मन्त्री थे जिनमें से एक मन्त्री राजा को दरबार में एक दिन कोई फाईल (मिसल) सुनाते समय इतना दत्त-चित्त रहा कि नीचे से सांप ने पैर को डस लिया और उसे इस बात की संज्ञा तक न रही। बाद में यह जानकर मन्त्री ने विचारा कि मैं संसार में इतना व्यस्त हूँ और यदि परमेश्वर में इतना मग्न होता तो बेड़ा पार होता। यह विचार कर मन्त्री महोदय संसार कार्य से उपरत हुए थे। इस घटना से मन्त्री जी की आत्मोन्नति का पता चलता है।

आगे कहा कि राजा ने अपनी राजधानी में एक भव्य विष्णु-मन्दिर बनवाया था। इस मन्दिर में जाने के लिए बत्तीस पोढ़ियों की एक सीढ़ी बनवाई गई थी। कुलशेखर ने भक्ति-भाव प्रदर्शन में एक-एक

पीढ़ी का एक-एक श्लोक बनाया। इस से यह मान्यता हुई है कि मुकुन्दमाला के केवल बत्तीस श्लोक हैं और अन्तिम दो श्लोक कवि ने आत्म-परिचय के रूप में दिए जान पड़ते हैं जो कश्मीर की प्रतियों में मिलते हैं।

मुकुन्दमाला में पाठ-भेद

भारतवर्ष में मुकुन्दमाला के कई पाठ उपलब्ध हैं। इस बात से डॉ० राजा रमण्ण महोदय भी सहमत हैं। पाठ में भिन्नता कहाँ से और कैसे आई इसके बारे में कुछ कहना अभी कठिन है।

हमारे प्रथम संस्करण का पाठ यहाँ के कर्मठ स्वर्गीय पं० केशव भट्ट की प्रति के अनुसार दिया गया था, इसमें ४१ श्लोक हैं। इनमें छः (पूर्व संस्करण के १५, १३, १७, १८ और २२) क्षेपक माने जाते हैं। यह छहों श्लोक स्वामी माधवानन्द सरस्वती की प्रति में नहीं मिलते हैं और न कश्मीर में प्रचलित विष्णु-पूजा में ही सम्मिलित हैं। अतः पंडितवर्य श्री श्यामलाल जत्तू से परामर्श कर यह श्लोक वर्तमान संस्करण में, मुकुन्दमाला के पूर्व-श्लोक क्रम से अलग कर, परिशिष्ट भाग में दिए गए हैं।

बम्बई की प्रति में मुकुन्दमाला का प्रथम श्लोक (वन्दे मुकुन्दम्०) नहीं मिलता है। इसका प्रथम श्लोक है-

धुष्यते यस्य नगरे रंगयात्रा दिने दिने।
तमहम् शिरसा वन्दे राजानम् कुलशेखरम्॥

क्योंकि इस श्लोक में राजा कुलशेखर को ही नमस्कार किया गया है, यह मुकुन्दमाला के लेखक का नहीं हो सकता। किसी टीकाकार का, जिसने इस ग्रन्थ पर टीका लिखी होगी, होना चाहिए। इसी प्रकार इस प्रति में और ऐसे १२ श्लोकों में से चार श्लोक पाण्डव-गीता में भी मिलते हैं जो महाभारत से उद्धृत हैं। एक श्लोक

(भवजलधिगतानाम्०) डॉ० रमण्ण की प्रति में १३वां और हमारे पूर्व संस्करण में १५वां है। परन्तु क्षेपक होने के कारण यह हमने परिशिष्ट भाग में ही रखा है। केवल २४ श्लोक कश्मीर और बम्बई के दोनों संस्करणों में मिलते हैं जिनमें कहीं-कहीं पाठ भेद भी है।

दो श्लोक और विवादास्पद हैं। हमारे संस्करण का दूसरा श्लोक (श्री वल्लभेति०) स्वामी माधवानन्द की प्रति में नहीं मिलता है परन्तु डॉ० रमण्ण की प्रति में यह यथा स्थान दूसरा श्लोक है। तीसरा श्लोक (जयतु जयतु देवो०) उपलब्ध सारी प्रतियों में है परन्तु यह पाण्डव-गीता का ५०वां श्लोक है। अतः यह श्लोक राजा कुलशेखर का होने में सन्देह है। परन्तु यह दोनों श्लोक हमने पं० श्यामलाल जत्तू से विचार कर यथा स्थान ही रखे हैं क्योंकि इनका पाठ कश्मीर की विष्णु-पूजा में प्रचलित है। इस प्रकार मुकुन्दमाला के इस संस्करण में ३५ श्लोक हैं। शेष ६ श्लोक क्षेपक माने जाते हैं। डॉ० रमण्ण महोदय की प्रति में कश्मीर की प्रतियों के केवल २८ श्लोक मिलते हैं। इनमें क्षेपक श्लोकों में से 'भवजलधिगतानां०' एक है। शेष १२ श्लोकों में से श्लोक ८, २८ और ३६ पाण्डव-गीता के ५२, २४ और ६० के श्लोकों से क्रमशः मिलते हैं। अन्य नौ श्लोकों के बारे में अभी कुछ कहना कठिन है।

भारत में उपलब्ध मुकुन्दमाला के भिन्न-भिन्न पाठों में से निर्धारण करना कि वास्तव में राजा कुलशेखर लिखित कौन से श्लोक हैं और क्या ये ३२ ही हैं, हम युवा-पीढ़ी के हाथ सौंप देते हैं।

आभार

अन्त में मैं उन उपरिलिखित महानुभावों का आभार प्रकट करता हूँ जिनके सहयोग तथा परामर्श से मुकुन्दमाला के बारे में कुछ ज्ञातव्य बातों का पता चला और तुलनात्मक परिचय विज्ञ पाठकों को दिया जा सका है।

भगवान् श्री लक्ष्मण जू के चरणकमलों में बार-बार प्रणाम है, जिनकी अहैतुकी करुणा, प्रेरणा तथा आशीर्वाद से इस उत्तम भक्ति-शास्त्र का उत्तरोत्तर प्रचार हो रहा है।

अस्तु मुकुन्दमाला में जहाँ भक्ति-वैराग्य द्वारा मोक्ष मार्ग का निर्देश है वहाँ इसमें काव्य-सौन्दर्य तथा दार्शनिकता की उत्तम पुट है, जो साथ में दिए श्रीमद् जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य तथा श्रीमद् अभिनवगुप्ताचार्य के लोकप्रिय कुछ टीका-सहित स्तोत्रों से निखर उठती है। इति

—जानकीनाथ कौल 'कमल'

जनवरी १७, १९९४

प्रस्तावना

वन्दे श्रीचरणारविन्दयुगलं संसारजाड्यापहम्।
वन्दे श्रीजगदिंशीतलकरं स्वस्थं शुभं सन्निधिम्॥

वन्दे भूसुरमर्पितार्तिप्रहरं संसारध्वांतापहम्।
वन्दे शीलगुणान्वितं गुरुवरं श्रीनीलकण्ठं शिवम्॥

इस जगत में द्वैत के संघर्ष में पड़ा जीव जन्मजन्मान्तर के सुख दु:ख को भोगता रहता है। यदि वह अपना स्वरूप जानने में उसी प्रकार लगता जिस प्रकार वह संसार के विषयों के अभिमुख रहता है तो अक्षय आनन्द को पाकर कृतकृत्य हो जाता। फिर यह भटकना नहीं पड़ता। वास्तव में वह आनन्द तो कहीं बाहर नहीं। जिस प्रकार वन में हिरण कस्तूरी की सुगन्धि का अधिकाधिक आस्वाद लेने के लिये सारा वन छान डालता है उसी प्रकार यह जीव अपने ही आनन्द का आभास विषयों में पाकर ठोकर खाता फिरता है। यदि हिरण को पता लग जाय कि कस्तूरी उसके अपने पास ही है तो वह नाहक भटक कर अतिश्रम के दु:ख को न पाता। ठीक इसी प्रकार यदि जीव पुरुषप्रयत्नसाध्य अपने पुण्य पुंज द्वारा कमाई भगवत्कृपा से अपने स्वरूप को जानने की इच्छा करता तो अवश्य ही गर्भवासादि दु:ख से छूटकर नित्यानन्द की ओर बढ़ जाता।

इस आनन्द-वृक्ष का मूल सत्सङ्ग है। सत्सङ्ग के बिना यह विवेक नहीं हो सकता है। अतः साधुमहिमा अपार और अनिर्वचनीय है।

महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च। (नारद भक्ति सूत्र ३९)

अर्थात् महान पुरुष का संग दुर्लभ है अगम्य और अमोघ है और वह भीः-

लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव। (नारद भक्ति सूत्र ४०)

अर्थात् सन्तों का समागम परमेश्वर की कृपा से ही प्राप्त होता है। गुसांई तुलसीदास जी कहते हैंः-

"बिनु सत्सङ्ग विवेक न होई,
रामकृपा बिनु सुलभ न सोई।"

सत्संग का इतना महत्व है कि सन्त कबीर निरा अनपढ़ होकर भी (मसि कागद छुए नहीं कलम गही नहिं हाथ) सत्संग के प्रभाव से आत्माराम के सुख का भागी बना और अनेक भक्त जन उसकी वाणी का प्रसाद पाकर धन्य हुए। अतः आवश्यकता है श्रद्धा और भक्ति की जिस से जीव सत्संग की ओर लग जाय। सत्संग से विवेक और वैराग्य उत्पन्न होते हैं। तत्पश्चात् जीव साधना में जुट जाये तो ईश्वरीय ज्ञान का उदय होना सम्भव होता है जिस से वह संकल्पजाल को समेटकर और अपने अद्वैत स्वरूप को पहचान कर अक्षय आनन्द का अनुभव करने लगेगा।

"यत्किंचिदपि संकल्पान्नरो दु:खे निमज्जति।
न किंचिदपि संकल्पात्सुखमक्षयमश्नुते॥"

–योगवासिष्ठ

अथवा जीव का पशुभाव शिवभाव में विलय हो जायेगा–

"पाशबद्धः सदा जीवः पाशमुक्तः सदा शिवः"

(कुलार्णव तन्त्र)

संसार-पाश में बंधा जीव अनेक प्रकार की यातनाओं में पीड़ित होता रहता है। आत्मोन्नति के साधन में न लग कर विपर्यय ज्ञान के आश्रित अवनति की ओर ही बढ़ता है। ईशावास्योपनिषद् में कहा है:–

"असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता-
स्तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।"॥३॥

अर्थात् आत्मा का हनन करने वाले लोग उन लोकों को जाते हैं जो असूर्या नाम वाले हैं, अप्रकाश रूप हैं और घोर अन्धकार रूप तम से ढके हुए हैं।

अतः जीव को इस संसार के संकल्प-पाश से मुक्त होकर ही शिवभाव अर्थात् स्वस्वरूप में स्थिति (स्वस्थता) का अनुभव होता है। वास्तव में इसी अभेदभाव की सिद्धि अथवा स्वरूपस्थिति के लाभ को ही नमस्कार कहते हैं। इस अवस्था में आत्मा (जीवभाव अथवा पशुभाव) का आनन्दघन परमात्मा (शिवभाव) में स्वाहा हो जाता है। यही महायज्ञ है जिसके तीन अंग हैं:– कर्म, उपासना और ज्ञान। कर्म इस यज्ञ के साधनरूप हैं, उपासना साधनों का अनुष्ठान

और ज्ञान अक्षयानन्द फल। यही अ उ म रूप प्रणव की तीन शक्तियाँ ॐ अक्षर में निहित है। यही एक अक्षर विष्णु, महेश्वर और ब्रह्मा का वाचक है। जैसे शास्त्र में कहा है:–

अकारो विष्णुरुद्दिष्ट उकारस्तु महेश्वरः।
मकारेणोच्यते ब्रह्मा प्रणवेन त्रयो मताः॥

प्रणव को शास्त्रों में दिव्य मन्त्र कहा है क्योंकि सृष्टि के आद्य में त्रिगुणात्मिका प्रकृति के स्पन्दन से जो ध्वनि प्रकट होती है, वह ॐकार रूपा है। प्रणव मन्त्र का निर्वचन शिवपुरारण के विश्वेश्वरी संहिता में एक स्थान पर इस प्रकार किया है :–

प्रः प्रपञ्चो न नास्ति वो युष्माकं प्रणवं विदुः॥

मण्डलेश्वर स्वामी श्री जयेन्द्रपुरी जी ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है:– "'प्र' अर्थात् प्रपञ्च, 'न' अर्थात् नहीं हैं, 'वः' अर्थात् आपमें। अर्थात् जिसके अर्थानुसंधान पूर्वक जप करने से मुमुक्षु को अपने सर्व प्रपञ्चोपशम शिव शान्त स्वरूप का बोध होता है, और जिस मन्त्र के द्वारा अपने शुद्ध स्वरूप में 'प्रपञ्चो नासीदस्तिभविष्यति' (प्रपञ्च वस्तुगत्या न था, न है एवं न होगा) इस प्रकार प्रपञ्च का त्रैकालिक अत्यन्ताभाव निश्चय होता है, उस ॐ मन्त्र को प्रणव कहते हैं।"

यज्ञोपवीत भी ॐकार की तीन मात्राओं का द्योतक है। इसी कारण यह तेहरा होता है। पं० सातवलेकर का विचार है कि "अ उ म इन तीन अक्षरों से क्रमशः जाग्रत–स्वप्न–सुषुप्ति यह तीनों अवस्थाएं बोधित होती हैं। मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन अवस्थाओं में व्याप्त है

मानो मनुष्य का जीवन रूपी जो महायज्ञोपवीत है उसके तीन धागे जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये ही हैं। इनको यज्ञरूप बनाने का कार्य प्रत्येक यज्ञोपवीत धारण करने वाले को करना चाहिए।" यज्ञोपवीत अर्थात् ब्रह्मव्रत का अभिप्राय यही है। यही ब्रह्मचर्य (ब्रह्म-आचरण करने का) व्रत है। "यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति" (गीता)।

यज्ञ में बलिदान की आवश्यकता अवश्य होती है। तभी तो यज्ञ सफल होता है। इस बलिदान में काम-क्रोध लोभादि इन्द्रियों के विकार ही बलि-पशु हैं। यह रहस्य महानिर्वाण तन्त्र में स्पष्ट लिखा है:-

कामक्रोधौ द्वौ पशू इमावेव बलिमप्रयेत्।
कामक्रोधौ विघ्नकृतौ बलिं दत्त्वा जपं चरेत्॥

"काम और क्रोध दो पशु हैं, इन्हीं की बलि देनी चाहिए। विघ्नकारी इन काम-क्रोध की बलि देकर (अर्थानुसंधान पूर्वक) जप करें।"

इस बलिदान करने में पुरोहित की विद्यमानता आवश्यक है। पुरो अर्थात् सब से पहले अपने यजमान का हित चाहे, उसको पुरोहित कहते हैं। उसका वर्णन शास्त्रों में इस प्रकार है:-

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

अतः प्रणव की महिमा को जानना चाहिए। शास्त्रों में प्रसिद्ध है–'तस्य वाचकः प्रणवः'– प्रणव (ओंकार) उस ईश्वर का वाचक है।

'मन्त्राणां प्रणवः सेतु'–प्रणव मन्त्रों का सेतु (पुल) है।

'एक एव तु विज्ञेयः प्रणवो योगसाधनम्'–योग का प्रकृष्ट साधन एक प्रणव ही है।

'ओमित्येतत्सर्वम्'–जो कुछ है सब ॐ है।

'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'–कल्याण के लिए इससे अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

इसलिए सिद्ध यही बात है कि–

'निरन्तरं ब्रह्मणि ये रमन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः।'

अर्थः–लंगोटी लगाकर अर्थात् अखण्ड ब्रह्मचर्य से जिनकी भोग-लालसा सर्वथा निवृत्त हुई है, जिनकी इन्द्रियां एवं मन स्वाधीन हैं, जो हरदम ब्रह्मानन्द का अनुसंधान करते हुए निर्भय प्रसन्न, शान्त एवं आनन्दमय रहते हैं, वे ही भाग्यशाली हैं।

इसी उद्देश्य को पाने के लिए वेद, तन्त्र, और शास्त्रों में यज्ञ, दान, तप और अनेक साधनायें विहित हैं। इनका यथायोग्य आचरण करने से मनुष्य इस देव-दुर्लभ जन्म को सफल बनाने की राह पर अपने माया-मोह से कलुषित अन्तःकरण को शुद्ध करने का प्रयत्न कर सकता है। फिर वेदान्त शास्त्राभिमत अथवा कश्मीर शैवमत (त्रिकमत) के अनुसार मुमुक्षु अद्वैतानन्द का उपभोग करते हुए

अभिमत साधना के उत्कट अभ्यास से, जिसकी उपलब्धि ईश्वरीय अनुग्रह अथवा शक्तिपात से ही होती है, कृतकृत्य बन सकता है। तभी कर्म, उपासना और यज्ञ सफल होते हैं। जैसे कहा है:-

स्नातं तेन समस्ततीर्थ सलिले, दत्ता च सर्वावनि-
र्यज्ञानां च कृतं सहस्त्रमखिलाः देवाश्च संतर्पिताः।
संसाराच्चसमुद्धृताः स्वपितरास्त्रैलोक्य पूज्योऽप्यसौ
यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात्॥

अर्थः-उसी (भाग्यशाली) ने सारे तीर्थों के जल में स्नान किया, सारी पृथ्वी दान में दी, सहस्त्रों यज्ञ किये, सब देवताओं को सन्तुष्ट किया, अपने पितरों का इस संसार-सागर से उद्धार किया और वहीं तीनों लोकों में पूजा के योग है, जिस (मुमुक्षु) का मन एक क्षण के लिए भी सत्परामर्श द्वारा परंब्रह्म अर्थात् शाश्वत शिव में स्थिरता को प्राप्त हुआ।

अर्थात् इस सब साधनों का परम साध्य परंब्रह्म परमेश्वर का यथार्थ ज्ञान ही है।

इसी भावना को बोधित करने के लिए इस छोटी सी पुस्तिका, मुकुन्दमाला के श्लोकों का अर्थ, अपने कुछ मित्रों के आग्रह तथा सज्जन-प्रेरणा से मुद्रण में लाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस महत्त्वपूर्ण स्तोत्र के श्लोकों का अर्थ, अपनी यत्किंचित् बुद्धि से समझने का सौभाग्य मेरी सुपुत्री इन्दुमती कौल को भगवान् श्री लक्ष्मण जू (स्वामी ईश्वरस्वरूप जी महाराज, ईशबर, गुप्तगंगा, कश्मीर) से किसी पूर्व कृत्य के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है। इन

श्लोकों का अवगहन करने के लिए ही इन्दुमती ने इनके अर्थ को क्रमपूर्वक लिखने का प्रयास किया। इस कार्य में उसे मेरी सहायता सुलभ थी। तभी तो उसके साहस में दृढ़ता आ गई। फिर उसने इस अर्थ को भगवान् के श्रीचरणों में अर्पित करके अपने साहस की परीक्षा लेनी चाही। श्री स्वामी जी महाराज ने अनुग्रह पूर्वक संशोधन किया और मुद्रण की अनुमति प्रकट की। अतः आपकी ही वस्तु आपको ही समर्पण है।

प्रत्येक श्लोक के अर्थ के अन्त में उसका भाव सरलता पूर्वक समझाने के लिए सारांश दिया गया है। मुकुन्दमाला में भक्ति और वैराग्य से पूर्ण उद्‌गार मिलते हैं जिनमें अन्तर्ज्योति परमात्मा में श्रद्धा की दृढ़ता होती है। शरणागति भाव का उदय होता है जिसके द्वारा जीव परमानन्द के अद्वयामृत का पान कर धन्य होता है और जन्म-मरण की फांसी से छूट जाता है। भवरोग की औषधि मिलती है। यह नुस्खा इसी स्तोत्र के २५वें श्लोक में सप्रमाण इस प्रकार दिया है:-

हे लोकाः शृणुत प्रसूतिमरणव्याधेश्चिकित्सामिमां
योगज्ञाः समुदाहरन्ति मुनयो यॉं याज्ञवल्क्यादयः।
अन्तर्ज्योतिरमेयमेकममृतं कृष्णाख्यमापीयतां
तत्पीतं परमौषधं वितनुते निर्वाणमात्यन्तिकम्॥

अर्थः-

सुनो चिकित्सा इस व्याधि की, जन्म-मरण कुछ जहाँ न हो।
याज्ञवल्क्य ऋषि, मुनि और योगी, साक्षी करते सत्ता को॥

तोल बिना जो अमृत-आकर, बिनमापे अन्तर्ज्योति को।
कृष्ण नाम की औषधि पीकर, पा लो अक्षय मुक्ति को॥

जानकीनाथ कौल
'कमल'

लल्लेश्वरी दिवस
२० अक्टोवर, १९६३
७७ द्राबीयार,
श्रीनगर (काश्मीर)

मुकुन्दमाला स्तोत्र की भूमिका

गत-वर्ष अपने प्रिय शिष्यों द्वारा प्रेरित होकर मैंने 'मुकुन्दमाला, नामक स्तोत्र-ग्रन्थ उनको पढ़ाया। सौभाग्यवश मेरे प्रिय सुहृद् श्री जानकीनाथ जी कौल की सुपुत्री इन्दुमती जी भी व्याख्यान सुनने के लिए आया करती थी। उसने मेरे संपूर्ण व्याख्यान को सुना और कुछ समय के पश्चात् मुझे इन श्लोकों का हिन्दी अनुवाद बना के सुनाया। मैं इसको देखके अति प्रसन्न हुआ, अतः मैंने जनता के हितार्थ इस मुकुन्दमाला नामक छोटी सी पुस्तिका को छपवाने का अनुमोदन किया। वही यह स्तोत्र-ग्रन्थ जनता के सम्मुख उपस्थित है। मुझे पूर्ण आशा है कि जनता को इस से किसी अंश में अवश्य आत्मिक लाभ प्राप्त होगा।

अस्तु, इस स्तोत्र के रचयिता राजा कुलशेखर हुए हैं। उन्होंने अपने इष्ट-देव भगवान् श्रीकृष्ण (श्री नारायण) की स्तुति इतने सुन्दर मर्माहत तथा विनीत शब्दों में की है कि पाठक इन श्लोकों को बार-बार पढ़ने का चाव रखता है। इन श्लोकों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि एक भक्त को अपने प्रभु के प्रति कितना प्रेम, कितनी उत्सुकता तथा कितनी तन्मयता होती है। अन्त में इतना कहना ही पर्याप्त है कि इस स्तोत्र में छिपे हुए नवीनतम भाव अपनापन लिए हुए हैं।

बहुत वर्ष हुए इसके श्लोकों का अनुवाद स्वर्गीय श्री माधवानन्द जी ने किया था, इसके अतिरिक्त और भी किसी ने इन श्लोकों का अनुवाद किया है, किन्तु उसमें भी छापे की अशुद्धियां तथा भाषा-सम्बन्धी अशुद्धियां दीख पड़ती हैं, अतः यह तीसरा प्रयास जनता की सेवा में उपस्थित है। आशा है यह प्रयास जनता को इस स्तोत्र की ओर पूर्ण-रूप से आकर्षित करने में समर्थ होगा। ॐ शांतिः॥

गुप्तगंगा, कश्मीर **ब्रह्मचारी लक्ष्मण**

अक्टोबर १९६३

निवेदन

चरण-कमल बंदौं हरि-राई।

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अन्धे को सब कछु दरसाई।

किसी पूर्व पुण्यपुञ्ज के फलस्वरूप मुझे श्री स्वामी ईश्वरस्वरूप जी महाराज के पास मुकुन्दमाला की सुन्दर स्तुति के अध्ययन का लाभ प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् प्रातः स्मरणीय स्वामी जी की प्रेरणा तथा अपने पूज्य पिता जी के आग्रह से मैंने इन श्लोकों का भाषानुवाद और सारांश लिखा। यह मेरा प्रथम प्रयास विद्वानों तथा विज्ञ पुरुषों के सामने केवल मेरी तोतली वाणी का ही प्रदर्शन है। यदि भक्तजनों को इससे कुछ लाभ प्राप्त हो तो यह मेरा बाल-विनोद मेरे हर्ष का कारण बनेगा।

इस अनुवाद का संशोधन मेरे पिताजी ने किया।

विनीता—

इन्दुमती कौल

अथ मुकुन्दमाला

ॐ वन्दे मुकुन्दमरविन्ददलायताक्षं
कुन्देन्दुशङ्खदशनं शिशुगोपवेषम्।
इन्द्रादिदेवगणवन्दितपादपीठं
वृन्दावनालयमहं वसुदेवसूनुम् ॥१॥

अर्थः—जिसकी आँखें कमल के पत्ते की तरह लम्बी हैं, कुन्द फूल, चन्द्रमा और शंख की तरह जिसके दाँत सफेद हैं, जो ग्वालबाल के वेश में हैं, जिसके पाद-पीठ (पैरों की चौकी) को इन्द्रादि देवतागण वन्दना करते हैं और जो वसुदेव का पुत्र है उसी वृन्दावनवासी नारायण की मैं वन्दना करता हूँ।

सारांशः—मैं भगवान् की महानता और उसकी लीलाओं का अनुभव करता रहूँ।

श्रीवल्लभेति वरदेति दयापरेति
भक्तप्रियेति भवलुण्ठनकोविदेति।
नाथेति नागशयनेति जगन्निवासे-
त्यालापिनं प्रतिदिनं कुरुमां मुकुन्द ॥२॥

अर्थः—"हे मुकुन्द! हे लक्ष्मी के प्यारे! हे वर को देने वाले! हे दया में लगे हुए! हे भक्तों के प्यारे! हे संसार के बीच लुढ़कने में भी पण्डित (चतुर)! हे शेषनाग पर सोने वाले! और हे जगत में निवास करने वाले!" ये ही आलाप करता हुआ मैं सदैव बना रहूँ।

सारांश:–मैं सदा भगवान् के नामों का जप करते हुए उनके स्वरूप का ध्यान करने वाला रहूँ।

जयतु जयतु देवो देवकीनन्दनोऽयं
जयतु जयतु कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः।
जयतु जयतु मेघश्यामलः कोमलाङ्गो
जयतु जयतु पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः ॥३॥

अर्थ:–हे मुकुन्द! देवकी को आनन्द देने वाले! आपको जय जयकार हो, कृष्ण जो यादव-कुल का प्रदीप (चिराग) है उसी आपको जय जयकार हो, जो बादल की तरह श्याम रंग वाला है और जिसके अंग कोमल हैं उसी आपको जय जयकार हो और जो पृथ्वी के भार (पापों) को नाश करने वाला है उसी नारायण को जय जयकार हो।

सारांश:–विभिन्न नामों वाले आप लीलामय नारायण के स्वरूप में मैं लीन हो जाऊँ।

मुकुन्द मूर्ध्ना प्रणिपत्य याचे
भवन्तमेकान्तमियन्तमर्थम्।
अविस्मृतिस्त्वच्चरणारविन्दे
भवे भवे मेऽस्तु भवत्प्रसादात् ॥४॥

अर्थ:–हे नारायण! मैं आपको सिर से (नत-मस्तक होकर) प्रणाम करता हूँ और आप से केवल यही एक वर माँगता हूँ कि मैं जन्म-जन्मान्तर में आपके प्रसाद से आपके चरण-कमलों का स्मरण भूल न जाऊँ।

सारांश:–मैं नित्य और निरन्तर भगवान् का स्मरण करता रहूँ।

श्रीमुकुन्दपदाम्भोजमधुनः परमाद्भुतम्।
यत्पायिनो न मुह्यन्ति मुह्यन्ति यदपायिनः ॥५॥

अर्थः—श्रीमुकुन्द के चरण-कमलों का मद्य (शराब) बहुत ही अलौकिक है जिसको पीकर (भक्तजन) मोह में नहीं पड़ते हैं और जिसको (अभक्तजन या संसारी लोग) न पीकर ही मोह में पड़ जाते हैं।

सारांशः—भगवान् के यथार्थ स्वरूप का निरन्तर ध्यान करने से ही मनुष्य माया-मोह से निवृत्ति प्राप्त कर सकता है।

नाहं वन्दे तव चरणयोर्द्वन्द्वमद्वन्द्वहेतोः
कुम्भीपाकं गुरुमपि हरे नारकं नापनेतुम्।
रम्यारामामृदुतनुलतानन्दनेनापि रन्तुं
भावे भावे हृदयभवने भावयेयं भवन्तम् ॥६॥

अर्थः—हे नारायण! मैं अद्वैत स्वरूप सिद्ध होने के लिए आपके चरण-कमलों की जोड़ी को प्रणाम नहीं करता, न कुम्भीपाक के भयंकर नरक को हटाने के लिए ही और इन्द्र के बाग में, जिसमें कोमल और सूक्ष्म लताएं हैं उसमें सुन्दर अप्सराओं की क्रीड़ा के लिए भी नहीं, परन्तु मैं हर अवस्था में हृदय रूपी भवन में आपकी ही भावना करूँ। इसीलिए मैं आपकी वन्दना करता हूँ।

सारांशः—मुझे अद्वैतवादी होने का अभिमान न हो। इहलोक और परलोक के भोगों में वैराग्य हो और स्वस्वरूप का निरन्तर ध्यान रहे।

नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे
यद्यद्भव्यं भवतु भगवन्पूर्वकर्मानुरूपम्।

एतत्प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेऽपि
त्वत्पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु ॥७॥

अर्थ:-हे भगवान्! मुझे लौकिक धर्म में भी विश्वास नहीं है, न धन के जोड़ने में, और न कामनाओं के भोगने में विश्वास है। जो मेरे प्रारब्ध के अनुसार भोग प्राप्त हों वे होते रहें। मैं आपसे यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे आपके चरण-कमलों की जोड़ी में जन्मजन्मान्तर में निश्चल भक्ति हो, क्योंकि मैंने आपकी भक्ति को ही बहुत माना है।

सारांश:-निज कर्मानुसार (प्रारब्धवश) लोक में भोग भोगता हुआ भी मैं भगवान् की अचल भक्ति का भाजन बना रहूँ।

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो
नरके वा नरकान्तक प्रकामम्।
अवधीरितशारदारविन्दौ
चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि ॥८॥

अर्थ:-हे नरक के शत्रु भगवान्! मुझे निश्चय करके स्वर्ग लोक में, मर्त्यलोक में या नरक लोक में निवास करना हो (परन्तु) आपके चरण-कमल जिनसे शरद्-काल के कमल को भी अनादर होता है, उन्हीं की मैं मरण-काल में भी चिन्ता करता रहूँ।

सारांश:-प्रारब्धानुसार संसार की किसी भी परिस्थिति में रहते हुए मुझे अन्त तक भगवान् के स्वरूप का चिन्तन बना रहे।

सरसिजनयने सशङ्खचक्रे
मुरभिदि मा विरमेह चित्त रन्तुम्।

सुखतरमपरं न जातु जाने
हरिचरणस्मरणामृतेन तुल्यम् ॥९॥

अर्थः—हे मन! जिस नारायण के नेत्र कमल के पत्ते जैसे हैं, जो शंख और चक्र धारण किये हुए हैं और जो मुरदैत्य का नाशक नारायण हैं, उसमें राग करने से मत रुको। निश्चय ही मैं हरि के चरणों के स्मरण रूपी अमृत के समान दूसरा कोई सुख नहीं जानता हूँ।

सारांशः—मन को भगवत्-चिन्तन में लगाने से ही स्वरूप लाभ होना सम्भव है।

मा भैर्मन्दमनो विचिन्त्य बहुधा यामीश्चिरं यातना
नामी नः प्रभवन्ति पापरिपवः स्वामी ननु श्रीधरः।
आलस्यं व्यपनीय भक्तिसुलभं ध्यायस्व नारायणं
लोकस्य व्यसनापनोदकरो दासस्य किं न क्षमः ॥१०॥

अर्थः—हे मूर्ख मन! चिर-काल-वर्ती यमराज की पीड़ाओं की चिन्ता से मत डरो, यह पाप की शत्रु पीड़ाएं हमें दबाने में समर्थ नहीं हैं। निश्चय करके हमारे स्वामी वही लक्ष्मीपति नारायण हैं। (अतः) आलस्य को दूर भगाकर भक्ति के द्वारा जो नारायण सुलभ है उसी का ध्यान कर। जो लोगों के दुःखों को दूर करने में समर्थ हैं, वह क्या मुझ दास के दुःखों को दूर करने में समर्थ नहीं हो सकते? अर्थात् वह मुझ दास के दुःखों को अवश्य दूर कर सकते हैं।

सारांशः—आलस्य को त्याग कर और पुरुषार्थ से बल पाकर ही मन को भगवत्-चिन्तन में लगाने से मनुष्य ईश्वर-अनुग्रह का भाजन बन सकता है।

भवजलधिमगाधं दुस्तरं निस्तरेयं
कथमहमिति चेतो मास्म गाः कातरत्वम्।
सरसिजदृशि देवे तावकी भक्तिरेका
नरकभिदि निषण्णा तारयिष्यत्यवश्यम् ॥११॥

अर्थः–हे मन! "संसार रूपी सागर जो कठिन और गहरा है, उसमें मैं किस तरह पार हो जाऊँ", यह विचार कर कायर मत बनो। जिस देव कृष्ण के नेत्र कमलपत्र के समान हैं, जो नरक को भी नाश करने में प्रवीण हैं, केवल उसी की भक्ति ही तुम्हें इस (भवसागर) से अवश्य पार ले जायेगी।

सारांशः–मन को भगवत्-चिन्तन में लगाने से ही मनुष्य इस भवसागर से पार हो सकता है।

तृष्णातोये मदनपवनोद्धूतमोहोर्मिमाले
दारावर्ते तनयसहजग्राहसङ्घाकुले च।
संसाराख्ये महति जलधौ मज्जतां नस्त्रिधामन्
पादाम्भोजे वरद भवतो भक्तिनावे प्रसीद ॥१२॥

अर्थः–हे तीन लोकों अर्थात् तीन अवस्थाओं के स्वामी! हम संसार रूपी महान् समुद्र में, जिसमें तृष्णा रूपी जल है, कामदेव रूपी पवन से उठी हुई मोह रूपी लहरों की मालाएं, (विषय-भोग-प्रधान) स्त्री रूपी भंवर (आवलुन) और सन्तान सुन्दर मगरमच्छों का समूह जैसा है, (इन्हीं के मेल से इसमें) डूबे हुए हैं। वर को देने वाले हे नारायण! हमें अपनी चरण-कमलों की भक्ति रूपी किश्ती में ही आश्रय दो।

सारांशः–मनुष्य को जाग्रत आदि तीनों अवस्थाओं में पुरुषोत्तम

भगवान् का ध्यान दृढ़ होने पर ही द्वैत-भ्रम का नाश होकर जीवन-मुक्ति का लाभ प्राप्त हो सकता है।

पृथ्वी रेणुरणुः पयांसि कणिका फल्गुः स्फुलिङ्गोलघु-
स्तेजो निःश्वसनं मरुत्तनुतरं रन्ध्रं सुसूक्ष्मं नभः।
क्षुद्रा रुद्रपितामहप्रभृतयः कीटाः समस्ताः सुराः
दृष्टे यत्र स तावको विजयते भूमावधूतावधिः ॥१३॥

अर्थः-जिस आपका साक्षात्कार करने पर पृथ्वी एक धूल का कण दिखाई देती है, जल छोटी बूंद बनता है, तेज आग की छोटी चिंगारी, वायु एक सांस मात्र रहता है और आकाश एक सूक्ष्म छेद जैसा प्रतीत होता है, शिव और ब्रह्मा आदि सब देवता छोटे कीड़े जैसे दिखाई देते हैं, उसी आपके उत्तम से उत्तम असीम सुख की जय हो।

सारांशः-उस पुरुषोत्तम परब्रह्म का साक्षात्कार होने पर पंचभूतों की कोई सत्ता नहीं रहती है और द्वैत परम्परा में पड़े हुए देवतागण भी तुच्छ बन जाते हैं।

आम्नायाभ्यसितान्यरण्यरुदितं कृच्छ्रव्रतान्यन्वहं
मेदच्छेदफलानि पूर्तविधयः सर्वे हुतं भस्मनि।
तीर्थानामवगाहनानि च गजस्नानं, विना यत्पद-
द्वन्द्वाम्भोरुहसंस्तुतिं विजयते देवः स नारायणः ॥१४॥

अर्थः-जिस नारायण के चरण-कमलों की जोड़ी की स्तुति के बिना शास्त्रों का अभ्यास करना जंगल में रोने के समान निष्फल हो जाता है, प्रतिदिन रखे हुए कृष्छ्र, चन्द्रायण आदि व्रत केवल त्वचा तथा चर्बी को ही पिघलाते हैं। परोपकार के पूर्त कर्म भी भस्म में आहुति डालने के तुल्य निष्फल हो जाते हैं, तीर्थों में स्नान करना

हाथी के स्नान के समान निष्फल हो जाता है, उस नारायण की भक्ति का आश्रय ही फलदायक है। अतः उसी नारायण की जय हो।

सारांशः—नारायण की अनन्य भक्ति के बिना शास्त्र विहित (विधान किये हुए) कर्म भी निष्फल ही होते हैं।

आनन्द गोविन्द मुकुन्द राम
नारायणानन्त निरामयेति।
वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चित्
अहो! जनानां व्यवसानि मोक्षे ॥१५॥

अर्थः—आश्चर्य है कि मनुष्य—'हे आनन्द! हे गोविन्द! हे मुकुन्द! हे राम! हे नारायण! हे अनन्त! और हे रोग रहित!' ये नाम कहने के लिए समर्थ होकर भी कभी नहीं कहते हैं, इसीलिए तो उन्हें मोक्ष (मुक्ति) मिलने में रुकावटें आ जाती हैं।

सारांशः—अमूल्य और देवदुर्लभ मानव-जन्म को प्राप्त करके भी मनुष्य अपने सहज स्वरूप को पहचानने का पुरुषार्थ नहीं करता। हाय! यह कैसा माया-मोह है।

क्षीरसागरतरङ्गशीकरासारतारकितचारुमूर्तये।
भोगिभोगशयनीयशायिने माधवाय मधुविद्विषे नमः ॥१६॥

अर्थः—क्षीरसागर के लहरों से उठने वाली छींटों के बौछार से मानो तारों की सुन्दर मूर्ति वाले लक्ष्मीपति नारायण और शेषनाग रूपी भोग-शय्या पर शयन करने वाले मधु राक्षस के शत्रु (मारने वाले) नारायण को मैं नमस्कार करता हूँ।

सारांशः—परब्रह्म के स्वरूप में निमग्न होने से उसकी अनन्तता का अनुभव होता है। इस प्रकार कर्म-फलों के भोग से निर्लेप होकर

मानव जीव-भाव के अहंकार को पर-प्रमातृभाव में लीन कर बैठता है।

वात्सल्यादभयप्रदानसमयादार्तार्तिनिर्वापणात्
औदार्यादघशोषणादगणितश्रेयःपदप्रापणात्।
सेव्यः श्रीपतिरेव सर्वजगतामेकान्ततः साक्षिणः
प्रह्लादश्च विभीषणश्च करिराट्
पाञ्चाल्यहल्याऽध्रुवः ॥१७॥

अर्थः–लक्ष्मीपति नारायण की जगत के सब मनुष्यों द्वारा अधिकतर (छः प्रकार से) उपासना करने योग्य है, इसके लिए अधिकतर साक्षी यह हैं:–(क) वात्सल्य (स्नेह) से प्रह्लाद का, (ख) अभय प्रदान के आचरण से विभीषण का, (ग) आर्त के दुःख को दूर करने से गजेन्द्र का, (घ) उद्धारता से द्रोपदी का, (ङ) अगणित पापों के नाश करने से अहल्या का और (च) मोक्ष पद के प्राप्त कराने से भक्त ध्रुव का उद्धार हुआ।

सारांशः–विशेष भक्तों के उदाहरण से यह स्वयं सिद्ध है कि भगवान् की अनन्य उपासना करने से ही आत्मोद्धार होता है।

नाथे श्रीपुरुषोत्तमे त्रिजगतामेकाधिपे चेतसा
सेव्ये स्वस्य पदस्य दातरि परे नारायणे तिष्ठति।
यं कञ्चित्पुरुषाधमं कतिपयग्रामेशमल्पार्थदं
सेवायै मृगयामहे नरमहो मूढा वराका वयम् ॥१८॥

अर्थः–सर्व जगत के स्वामी, सर्व-समृद्ध पुरुषोत्तम, तीनों लोकों के स्वामी, मन से सेवा करने पर अपने पद को देने वाले परमात्मा और नारायण के होते हुए यदि हम किसी संकुचित लाभ देने

वाले की इच्छा रखते हैं तो आश्चर्य है कि हम सब बेचारे मूर्ख ही हैं, जो जगतपति को छोड़कर इस अधम पुरुष की सेवा करते हैं।

सारांश:–ईश्वर की अनन्योपासना ही आत्मोन्नति का कारण हो सकती है।

हे लोका:शृणुत प्रसूतिमरणव्याधेश्चिकित्सामिमां
योगज्ञा: समुदाहरन्ति मुनयो यां याज्ञवल्क्यादय:।
अन्तर्ज्योतिरमेयमेकममृतं कृष्णाख्यमापीयतां
तत्पीतंपरमौषधं वितनुते निर्वाणमात्यन्तिकम् ॥१९॥

अर्थ:–अरे लोगों! जन्म-मरण रूप व्याधि की इस चिकित्सा (इलाज) को सुनो, जिसे याज्ञवल्क्य आदि योगी और मुनि कहते हैं। श्रीकृष्ण नाम रूपी अन्तर्ज्योति स्वरूप और परिणाम रहित अमृत को पी लो। उस परम औषधि को पीकर पारमार्थिक मोक्ष मिल जाता है।

सारांश:–अन्तर्ज्योति स्वरूप भगवान् का ध्यान और नाम जप रूप औषधि ही भवरोग को हटाकर आत्मोन्नति का साधन बन सकती है।

बद्धेनाञ्जलिना नतेन शिरसा गात्रै: सरोमोद्गमै:
कण्ठेन स्वरगद्गदेन नयनोद्गीर्णेन वाष्पाम्बुना।
नित्यंत्वच्चरणारविन्दयुगलध्यानामृतास्वादिना-
मस्माकंसरसीरुहाक्षसततंसम्पद्यतांजीवितम् ॥२०॥

अर्थ:–हे कमलपत्र जैसे नेत्र वाले प्रभु! दोनों हाथ जोड़कर झुके हुए सिर से, रोमांच से भरे अंगों से, गदगद स्वर वाले कण्ठ से और नेत्रों से बहते हुए आँसुयों के जल से हम प्रतिदिन आपके चरणों की जोड़ी के ध्यानरूपी अमृत का स्वाद लेते हुए अपना सारा जीवन

बिताते रहें।

सारांश:–सम्पूर्ण शरणागति भाव से निर्लेप भगवान् के ध्यान में अवस्थित रहना ही यथार्थ में जीवन है।

तत्त्वंब्रुवाणानि परं परस्माद्
अहो क्षरन्तीव सुधां पदानि।
आवर्तय प्राञ्जलिरस्मि जिह्वे!
नामानि नारायणगोचराणि ॥२१॥

अर्थ:–अरी जीभ! मैं हाथ जोड़कर तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम उन नामों का बार-बार जप करती रहो जो तत्त्व को कहने वाले बड़े से बड़े नारायण-सम्बन्धी नामों के पद, अमृत की तरह अति चकित विस्तार को प्राप्त होता है।

सारांश:–स्वरूप के नित्य स्मरण में रहना ही जप है।

इदं शरीरं परिणामपेशलं
पतत्यवश्यं श्लथसन्धिजर्जरम्।
किमौषधैः क्लिश्यसि मूढ दुर्मते
निरामयं कृष्णरसायनं पिब ॥२२॥

अर्थ:–यह शरीर परिणामस्वरूप मसलन वाला है, ढीले जोड़ों वाला और जर्जर होने के कारण अवश्य नष्ट होने वाला है। अत: हे दुर्बुद्धि वाले मूर्ख (जीव)! औषधियों (दवाइयों) के सेवन करने से क्यों कष्ट उठा रहे हो? माया की उपाधि रहित श्रीकृष्ण नाम की औषधि पी लो (जिससे मायोपाधि रहित ब्रह्म अर्थात् स्वस्वरूप में स्थित होकर अक्षय आनन्द का उपभोग करोगे)।

सारांश:–क्षणभंगुर और नाशवान इस शरीर का मोह छोड़कर

स्वरूपस्थिति का लाभ सम्भव है।

श्रीमान्नाम प्रोच्य नारायणाख्यं
के न प्राप्ता वाञ्छितं पापिनोऽपि।
हा नः पूर्वं वाक्प्रवृत्ता न तस्मि-
स्तेन प्राप्तं गर्भवासादिदुःखम् ॥२३॥

अर्थः—नारायण के शुभ नाम का (ध्यानपूर्वक) उच्चारण करने से किन पापियों ने अपनी-अपनी इच्छाओं के अनुसार फल नहीं पाया! शोक है कि हमारी वाणी उस (नारायण के नामोच्चारण) में पहले (पूर्व जन्मों में) प्रवृत्त न हुई थी। इसी से तो गर्भवास आदि (संसार के) दुःखों को हम प्राप्त हुए हैं।

सारांशः—ईश्वर-पराङ्मुख रहने से ही जीव मायाकार्य जगत के दुःखों से पीड़ित रहता है।

मा द्राक्षं क्षीणपुण्यान्क्षणमपि भवतो भक्तिहीनान्पदाब्जे
मा श्रौषं श्राव्यबद्धं तव चरितमपास्यान्यदाख्यानजातम्।
मास्प्राक्षं माधव त्वामपि भुवनपतिं चेतसाऽपह्नुवानं
मा भूवं त्वत्सपर्याव्यतिकररहितो
जन्मजन्मान्तरेऽपि ॥२४॥

अर्थः—हे लक्ष्मीपति नारायण! आपके चरण-कमलों में भक्ति से रहित (अतः) क्षीण हुए पुण्य वाले जीवों को मैं न देखूँ, आपके चरित (गुणानुवाद) को छोड़कर दूसरे कथा-कहानी कान धर कर न सुनूँ। आप (चौदह) भुवनों के स्वामी को मन से निषेध करने वाले का स्पर्श न करूँ और इस जन्म अथवा दूसरे जन्मों में भी आपका ध्यान आदि पूजा से विमुख न रहूँ।

सारांश:–आत्मलाभ के लिए ईश्वरोन्मुख रहने से पहले विषयों से विमुख होना आवश्यक है।

मदन परिहर स्थितिं मदीये
मनसि मुकुन्द पदारविन्दधाम्नि।
हरनयनकृशानुना कृशोऽसि
स्मरसि न चक्रपराक्रमं मुरारेः ॥२५॥

अर्थ:–हे कामदेव! भगवान् नारायण के चरण-कमलों का स्थान जो मेरा मन बना हुआ है, उसमें तुम ठहरना छोड़ दो। तुम तो शिव के (तीसरे) नेत्र की अग्नि से दग्धप्राय बने हुए हो (और) नारायण के सुदर्शन चक्र के पराक्रम (बल) को स्मरण नहीं करते हो।

सारांश:–समग्र उन्नतियों का साधन एक मात्र ब्रह्मचर्य ही है।

दारा वाराकरवरसुता तेऽङ्गजोऽयं विरिञ्चिः
स्तोता वेदास्तव सुरगणो भृत्यवर्गः प्रसादः।
मुक्तिर्मध्ये जगदविकलं तावकी देवकीयं
माता मित्रं बलिरिपुसुतस्तत्त्वतोन्यन्न जाने ॥२६॥

अर्थ:–क्षीरसागर की उत्तम पुत्री आपकी स्त्री हैं, ब्रह्मा आपके पुत्र हैं, चार वेद (आर्ष) आपकी स्तुति करते हैं, देवता गण ही आपके नौकरों का समूह है, जगत के बीच में रहते हुए व्याकुल न होने का अनुग्रह ही मुक्ति है, देवकी आपकी माता हैं, बलि के शत्रु का पुत्र आपका मित्र है। इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं जानता हूँ।

सारांश:–भगवान् नारायण ही वेदों और देवताओं का आदि कारण है। अतः उसकी सत्ता सर्वजगत में व्याप्त है सच्चे भक्तों को

यही निश्चय होना चाहिए।

जिह्वे कीर्तय केशवं मुररिपुं चेतो भज श्रीधरं
पाणिद्वन्द्व समर्चयाच्युत कथाः श्रोत्रद्वय त्वं शृणु।
कृष्णं लोकय लोचनद्वय हरेर्गच्छाङ्घ्रियुग्मालयं
जिघ्र घ्राण मुकुन्दपादतुलसीं मूर्धन्नमाधोक्षजम् ॥२७॥

अर्थः–अरी जीभ! केशव का कीर्तन करते रहो, हे मन! मुरारी का भजन करते रहो, हे दो हाथों! लक्ष्मीपति नारायण की पूजा करते रहो, हे दो कानों! तुम अच्युत नारायण की कथाओं को सुनते रहो, हे दो नेत्रों! भगवान् कृष्ण के ध्यान में ही मग्न रहो, हे दो पैरों! हरि के मन्दिर की यात्रा करते रहो, हे नासिका! तुम मुकुन्द के पादों पर अर्पित तुलसी को सूंघते रहो और हे सिर! तुम इन्द्रियों से अतीत नारायण को नमन करते रहो।

सारांशः–इन्द्रियों को विषयों से हटाकर नारायण में लीन करना ही श्रेयस्कर है।

यत्कृष्णप्रणिपातधूलिधवलं तद्वैशिरःस्याच्छुभं
ते नेत्रे तमसोज्झिते सुरुचिरे याभ्यां हरिर्दृश्यते।
सा बुद्धिर्नियमैर्यमैश्च विमला या माधवध्यायिनी
सा जिह्वाऽमृतवर्षिणी प्रतिपदं या स्तौति
नारायणम् ॥२८॥

अर्थः–वही सिर सार्थक है जो कृष्ण भगवान् को प्रणाम करने से धूलि धूसरित (अर्थात् धूलि से सफेद) हुआ हो। वे ही (अज्ञान रूप) अन्धकार को हटाये हुए सुन्दर नेत्र (अर्थात् दिव्य चक्षु) है जिनसे भगवान् हरि का दर्शन (साक्षात्कार) किया जाता हो। नियम

(जप, तप, दान आदि द्वारा इन्द्रिय निग्रह) और यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि द्वारा मनोनिग्रह) का सेवन करने से निर्मल बनी हुई बुद्धि (जिसे 'ऋतम्बरा' प्रज्ञा कहते हैं), वही है जो नारायण का ध्यान करती हो और वही प्रत्येक वार्ता में (कथि-पत्-कथि प्यठ) अमृत वर्षन करने वाली जिह्वा है जो (मन और वाणी को एक करके) नारायण की स्तुति में लगी हो।

सारांश:–इन्द्रियों द्वारा अगोचर भगवान् का साक्षात्कार करने के लिए उनके विषयों के मोह से सर्वथा निवृत्त होना आवश्यक है।

भक्तद्वेषभुजङ्गगारुडमणिस्त्रैलोक्यरक्षामणि-
र्गोपीलोचनचातकाम्बुदमणिः सौन्दर्यमुद्रामणिः।
श्रीकान्तामणिरुक्मिणीघनकुचद्वन्द्वैकभूषामणिः
श्रेयो ध्येयशिखामणिर्दिशतु नो गोपालचूडामणिः ॥२१॥

अर्थ:–बाल कृष्ण गोपाल (अर्थात् वेदों में गाया हुआ भगवान् नारायण) रूप (जो) शिरोरत्न (अर्थात् सर्वाराध्य देव है, जो) भक्तों में द्वेष रूप सांप को नष्ट करने वाला गरुड़ रूपी रत्न (है, जो) त्रिलोकी की रक्षा करने वाला रत्न (है, जो) सुन्दरता रूप अंगूठी का रत्न (है, जो) प्यारी लक्ष्मी का रत्न (है, जो) रुक्मिणी के (ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति रूप) घने वक्षस्थल का केवल भूषण बना हुआ रत्न (है, और जो) ध्यान करने योग्य चर्मावस्था रूप रत्न (है, वह) हम (भक्तों को) कल्याण प्रदान करे।

सारांश:–देवादिदेव परब्रह्म के स्वरूप का अनुभव उसी के अनुग्रह से, माया के मोह को लांघकर ही, होना सम्भव है।

शत्रुच्छेदैकमन्त्रं सकलमुपनिषद्वाक्यसम्पूज्यमन्त्रं

संसारोत्तारमन्त्रं समुदिततमसां संघनिर्याणमन्त्रम्।
सर्वैश्वर्यैकमन्त्रं व्यसनभुजगसन्दष्टसन्त्राणमन्त्रं
जिह्वे श्रीकृष्णमन्त्रं जप जप सततं जन्मसाफल्य-
मन्त्रम् ॥३०॥

अर्थः—हे जीभ! शत्रु को मारने का (अर्थात् द्वैत का निवारण करने वाला) एक ही मन्त्र, सारे उपनिषद वाक्यों द्वारा पूजा के योग्य मन्त्र, संसार से पार उतरने वाला मन्त्र, (अज्ञान रूप) अन्धकार जिनमें पैदा हुआ हो उनके समूह को हटाने वाला मन्त्र, सब ऐश्वर्यों को (देने वाला) एक ही मन्त्र, विषयादि दुःख रूपी साँपों के काटने से बचाने वाला मन्त्र, श्रीकृष्ण नाम का मन्त्र जो (जीव के) जन्म को सफल बनाने वाला अर्थात् अभेद दृष्टि देने वाला मन्त्र है उस (मन्त्र) का बार-बार जप करती रहो।

सारांशः—ईश्वर के गुणों का लगातार मनन करते रहने से ही जीव को संसार के दुःखों से रक्षा हो सकती है।

व्यामोहोद्दलनौषधं मुनिमनोवृत्तिप्रवृत्यौषधं
दैत्यानर्थकरौषधं त्रिभुवने सञ्जीवनैकौषधम्।
भक्तार्तिप्रशमौषधं भवभयप्रध्वंसि दिव्यौषधं
श्रेयःप्राप्तिकरौषधं पिव मनः श्रीकृष्णनामौषधम् ॥३१॥

अर्थः—हे मन! श्रीकृष्ण के नामोच्चारण रूप औषधि जो संसार रूप घने मोह को नष्ट करने वाली औषधि (है, जो) मननशील (योगियों) की मनोवृत्ति को एकाग्र करने की औषधि (है, जो भूः भुवः और स्वः, इन) तीनों भुवनों में केवल संजीवन रूप (अर्थात् अभेद भक्ति की) औषधि (है, जो) भक्तों के दुःखों को शमन करने

वाली औषधि (है, जो) संसार के (जन्म-मरण रूप) भय को नाश करने वाली अलौकिक औषधि (है और जो आत्मोन्नति रूप) कल्याण को प्राप्त कराने वाली औषधि (है, उसको) सदा के लिए पीता रह।

सारांश:-श्रीकृष्ण के नामोच्चारण द्वारा परब्रह्म के ध्यान में एकाग्रता से दृढ़ता प्राप्त करना ही मोह-मय और भेद-संकुल संसार-द्वन्द्व रूप रोग की औषधि है।

आश्चर्यमेतद्धि मनुष्यलोके
सुधांपरित्यज्य विषं पिबन्ति।
नामानि नारायणगोचराणि
त्यक्त्वान्यवाचः कुहकाः पठन्ति ॥३२॥

अर्थः-यह आश्चर्य ही है (कि इस) मनुष्य लोक में (देव-दुर्लभ मानव-जन्म को प्राप्त करके लोग अद्वैत रूप) अमृत को छोड़कर (द्वैत रूप) विषय भोग रूपी विष को पीते रहते हैं (क्योंकि वे) नारायण का साक्षात्कार कराने वाले (उसके) नामों (के उच्चारण को) छोड़कर दूसरी बातों का (अनात्म वर्ग सम्बन्धी अर्थात् विषय-वासना रूप निरर्थक) बकवास करते रहते हैं।

सारांश:-देव-दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर जीव को आत्म-लाभार्थ विषय-वासना से सर्वथा विरक्त होकर भगवान् के भजन ध्यान में मग्न रहना चाहिए।

लाटी नैत्रपुटी पयोधरघटी क्रीडाकुटी दोस्तटी
पाटीरद्रुमवर्णनेन कविभिर्मूढैर्दिनं नीयते।
गोविन्देति जनार्दनेति जगतां नाथेति कृष्णेति च
व्याहारैः समयस्तदेकमनसां पुंसां परिक्रामति ॥३३॥

अर्थः-भेद बुद्धि वाले मूर्ख कवि (संसार के मोह को बढ़ाने वाले और क्षणभंगुर) प्रेमिका-सौन्दर्य के विषय-वर्णन में दिन गुजारते हैं। (परन्तु) एकाग्र मन वाले (भक्त-भोगी) 'हे गोविन्द! हे जनार्दन! हे तीन लोकों के नाथ! और हे कृष्ण!' (इस प्रकार के) वचन बोलने में ही समय लगाते हैं।

सारांशः-विषय-वासना का सर्वथा त्याग करना और भगवत्-चिन्तन में सदा लीन रहना ही मनुष्य के लिए श्रेयस्कर है।

अयाच्यमक्रेयमयातयाममपाच्यमक्षय्यमदुर्भरं मे।
अस्त्येव पाथेयमतिप्रयाणे
श्रीकृष्णनामामृतभागधेयम् ॥३४॥

अर्थः-(इस जन्म की) अन्तिम लम्बी यात्रा के लिए मेरे पास श्रीकृष्ण का नाम-अमृत रूप सौभाग्य ही रास्ते का भोजन है (जो) न उधार लाया है, न खरीदा है, न बासी है, न पकाने की आवश्यकता रखता है, न क्षय होने वाला है और न दुःख देने वाला भोज ही है।

सारांशः-भगवत्-नाम स्मरण ही आत्मोन्नति का सरल उपाय है।

यस्य प्रियौश्रुतिधरौ रविलोकगीतौ
मित्रे द्विजन्मपरिवार शिवावभूताम्।
तेनाम्बुजाक्षचरणाम्बुजषट्पदेन
राज्ञा कृता स्तुतिरियं कुलशेखरेण ॥३५॥

इति श्रीकुलशेखर राज्ञा कृता मुकुन्दमाला स्तुतिः सम्पूर्णा॥

अर्थः–जिस (राजा) के दो प्रिय मित्र श्रुति–परायण थे, ज्ञाता थे, जिनका यश सूर्यलोक तक व्याप्त था और जो ब्राह्मण परिवार में कल्याणरूप ही पैदा हुए थे, उस कमल, नेत्र श्रीकृष्णचन्द्र के चरण-कमलों के भ्रमर बने, राजा कुलशेखर ने यह स्तुति रची।

इस प्रकार इन्दुमतिकृत मुकुन्दमाला स्तुति का
भाषानुवाद सम्पूर्ण हुआ॥

मुकुन्दमाला का परिशिष्ट भाग

(क्षेपक श्लोक)

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां
सुतदुहितृकलत्रत्राणभारावृतानाम्।
विषमविषयतोये मज्जतामप्लवानां
भवति शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥१५॥-१

अर्थः-संसार समुद्र में डूबे हुए, शीतोष्णादि द्वन्द्वों के वायु से छिन्न-भिन्न किए हुए, (आसक्ति के कारण) पुत्र, पुत्री और स्त्री की रक्षा के भार से घिरे हुए, कठिन विषयों रूपी जल में डूबे हुए, आश्रय देने वाली किश्ती (यम, नियम, साधन युक्त सुदृढ़ शरीर) से रहित बने हुए मनुष्यों को केवल विष्णु रूपी जहाज़ ही शरण देने वाला है।

सारांशः-संकल्प-विकल्प रूप दुःख से पूर्ण इस संसार में केवल भगवान् विष्णु का आश्रय ही (साधक) मनुष्य को कैवल्य सुख प्रदान करने में समर्थ है।

रजसि निपतितानां मोहजालावृतानां
जननमरणधूलीदुर्गतिं सङ्गतानाम्।
शरणमशरणानामेक एवातुराणां
कुशलपथि नियोक्ता चक्रपाणिर्नराणाम् ॥१६॥-२

अर्थः-रजोगुण रूपी धूल में डूबे हुए मोह रूपी जाल से घेरे

हुए, जन्म-मरण की आंधी की दुर्गति में मिले हुए, (इस प्रकार) असहाय बने हुए दुःखी मनुष्यों को आत्म-उन्नति के कुशल मार्ग में लगाने वाला सुदर्शन-चक्र-धारी नारायण ही केवल एक सहारा है।

सारांशः-संसार के दुःखों का अनुभव करके जिन प्राणियों में वैराग्य उत्पन्न हुआ हो, उनको नारायण ही कल्याण मार्ग पर चलने का अनुग्रह करते हैं।

अपराधसहस्त्रसङ्कुलं,
पतितं भीमभवार्णवोदरे।
अगतिं शरणागतं हरे!
कृपया केवलमात्मसात्कुरु ॥१७॥-३

अर्थः-हे हरि! हज़ारों अपराधों में बंधे हुए, भयंकर संसार रूपी समुद्र के बीच में पड़े हुए, निवृत्ति उपाय से रहित और शरण में आये हुए (मुझ) पर कृपा करके केवल अपने स्वरूप में लीन कीजिये।

सारांशः-संसार के दुःखों से पीड़ित मनुष्य का भी उद्धार भगवान् अपनी अनुग्रह-शक्ति से करने में समर्थ हैं।

यच्चिन्तितं च मनसा वचसा निरुक्तं
चक्षुःकरश्रवणपादविचेष्टितं च।
यद्यन्निशासु दिवसेषु कृतं मयैव
तत्तज्जनार्दन तवार्चनमेव भूयात् ॥१८॥-४

अर्थः-हे जनार्दन (पापी जनों का मर्दन करने वाले) जो कुछ मैंने मन में चिन्तन किया है, जो मैंने वाणी से कहा है, जो मैंने हाथ, कान, आँख और चरण से चेष्टाएं की हैं और जो कर्म मैंने रात और

दिन में किये हैं, वे (सब) मुझे आपकी ही पूजा बन जाए।

सारांश:-भगवत् अनुग्रह चाहने वाले भक्त के आन्तरिक और बाह्य सब कर्म भगवत्-अर्पण ही होते हैं।

मा मे स्त्रीत्वं मा च मे दासभावो
मा मूर्खत्वं मा कुदेशेषु जन्म।
मिथ्यादृष्टिर्मा च मे स्यात्कदाचि-
ज्जातौ जातौ विष्णुभक्तो भवामि ॥१९॥-५

अर्थ:-(हे भगवान्!) मुझे स्त्री-भाव (विषयोन्मुख होने के कारण चंचल स्वभाव) न मिले, न मुझे दास भाव मिले, न मैं मूर्ख भाव में रहूँ, न मेरा जन्म बुरे देश में हो (जहाँ साधना में बाधा हो और सज्जनों का अभाव हो) औन न मुझे कभी भी अनात्म-दृष्टि (देह-बुद्धि) हो, बल्कि मैं जन्म-जन्मान्तरों में विष्णु का भक्त बना रहूँ।

सारांश:-देह-बुद्धि को बढ़ाने वाली परिस्थितियों की उपेक्षा (तिरस्कार) करके ही भक्त भगवान् के अनन्य-शरणभाव को प्राप्त होता है।

क्षीरसारमपनीय शङ्कया,
स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया।
मानसे मम नितान्ततामसे,
नन्दनन्दन कुतो न लीयसे ॥२२॥-६

अर्थ:-हे नन्द गोप को आनन्द देने वाले श्रीकृष्ण भगवान्! यदि आपने मक्खन की चोरी करने की शंका से भाग जाना स्वीकार किया है तो घने अन्धकार से भरे हुए मेरे मन में क्यों नहीं छिप जाते

हो।

सारांश:–अज्ञान अन्धकार से भरे हुए मन वाला पुरुष भी यदि स्वयं-प्रकाश भगवान् का ध्यान करे तो उसे भगवान् का प्रसाद होना सम्भव है।

–इति–

परिशिष्ट-क

अथ उत्पलदेवकृतं संग्रहस्तोत्रम्

संग्रहेण सुखदुःखलक्षणं
मां प्रति स्थितमिदं श्रृणु प्रभो!
सौख्यमेष भवता समागमः
स्वामिना विरह एव दुःखिता ॥१॥

अर्थ:-हे प्रभो! मेरे लिए सुख क्या है और दुःख क्या है, यह मैं आपको संक्षेप में कह दूँ। आप कान धर कर सुनिए। यह जो आपके साथ मेरा तन्मयीभाव है यही सुख है। आप प्रत्यक् अभिन्न आत्मा से वियोग ही मेरा दुःख है।

अन्तरप्यतितरामणीयसी
या त्वदप्रथनकालिकास्ति मे।
तामपीश परिमृज्य सर्वतः
स्वं स्वरूपममलं प्रकाशय ॥२॥

अर्थ:-यदि मेरे चित्त में जरा सी भी मलिनता (आणवमल से छिपा ज्ञान) है जिसे आप चित्स्वरूप का साक्षात्कार प्रकट-रूप से नहीं होता तो उसको भी पूर्ण रूप से दूर करके अपने चिदानन्दमय निर्मल स्वरूप को प्रकट कीजिए। यही मेरी परम अभिलाषा है।

तावके वपुषि विश्वनिर्भरे
चित्सुधारसमये निरत्यये।
तिष्ठतः सततमर्चतः प्रभुं
जीवितं मृतमथान्यदस्तु मे ॥३॥

अर्थः–मैं चाहता हूँ कि मैं आपके अविनाशी, जगत् में प्रकाशरूप चिदानन्दरूपी अमृत-रस से भरे हुए, स्वरूप में लीन होकर ही लगातार आपकी पूजा में लगा रहूँ। फिर चाहे मैं जीवित रहूँ या मर जाऊँ अथवा मोक्ष प्राप्त हो।

ईश्वरोऽहमहमेव रूपवान्
पण्डितोऽस्मि सुभगोऽस्मि कोऽपरः।
मत्समोऽस्ति जगतीति शोभते
मानिता त्वदनुरागिणः परम् ॥४॥

अर्थः–मैं ईश्वर (स्वतन्त्र) हूँ, मैं ही सुन्दर (चित्प्रकाश से उज्जवल) हूँ, मैं ज्ञानवान् (तत्त्वदर्शी) हूँ, मैं ही (परमानन्दरस से पूर्ण) सौभाग्य वाला हूँ और इस जगत् में मेरे समान दूसरा कौन है–ऐसे स्वाभिमान की भावना (पूर्णाहन्ता) आपके ही भक्त हो अत्यन्त शोभा देती है (क्योंकि वह समावेश में आपके साथ एकात्मता का अनुभव करता है)।

देवदेव भवदद्वयामृता-
ख्यातिसंहरणलब्धजन्मना।
तद्यथास्थितपदार्थसंविदा
मां कुरुष्व चरणार्चनोचितम् ॥५॥

अर्थः–इसलिए, हे देवादिदेव! आपके अद्वैतामृत का अज्ञान

नष्ट होने पर जो स्वरूप साक्षात्कार रूप ज्ञान उत्पन्न होता है ऐसे चिद्रूप से अभिन्न होने वाले सभी पदार्थों के ज्ञान से मुझे अपने चरणों की पूजा करने के योग्य बना दीजिए।

ध्यायते तदनु दृश्यते ततः
स्पृश्यते च परमेश्वरः स्वयम्।
यत्र पूजनमहोत्सवः स मे
सर्वदास्तु भवतोऽनुभावतः ॥६॥

अर्थः–जिस से (आपके अनुग्रह से प्राप्त अभ्यास द्वारा) परमेश्वर का आप से आप ध्यान किया जाता है, उसके बाद समावेश में दिखाई देता है और फिर अनायास ही स्पर्श किया जाता है वही आपकी पूजा का बड़ा उत्सव आपके दिए अनुभव की युक्ति से मुझे सदा प्राप्त रहे।

यद्यथास्थितपदार्थदर्शनं
युष्मदर्चन महोत्सवश्चयः।
युग्ममेतदितरेतराश्रयं
भक्तिशालिषु सदा विजृम्भते ॥७॥

अर्थः–(ज्ञानकाल में) सभी सांसारिक वस्तुओं को आप चिद्रूप से अभिन्न देखना और (ध्यान, दर्शन और स्पर्शन–भक्तिकाल में) आपकी पूजा का उत्सव, ये दोनों बातें एक दूसरे पर आश्रित रहती हैं। आपके अनन्य भक्तों में इन दोनों बातों का (क्रय–मुद्रा से) सदा विकास होता है।

तत्तदिन्द्रियमुखेन सन्ततं
युष्मदर्चनरसायनासवम्।

सर्वभावचषकेषु पूरिते-
ष्वापिबन्नपि भवेयमुन्मदः ॥८॥

अर्थः—आपकी पूजा (स्वरूप-परामर्श) के रसायन-रूपी मदिरा को लबालब भरे हुए सारे पदार्थ-रूपी प्यालों में सभी इन्द्रिय-रूपी मुखों से, लगातार (पूर्णरूप से) पीते हुए ही मैं मतवाला (चित्स्वरूप के आनन्द में मग्न) बना रहूँ।

अन्यवेद्यमणुमात्रमस्ति न
स्वप्रकाशमखिलं विजृम्भते।
यत्र नाथ भवतः पुरेस्थितिं
तत्र मे कुरु सदा तवार्चितुः ॥९॥

अर्थः—हे स्वामी! जिस स्थिति में आपसे भिन्न जानने योग्य वस्तु जरा सी भी नहीं रहती है और सारा जगत् स्वप्रकाशरूप होकर विकसित होता है उसी आपकी (जगदानन्द) नगरी में आपकी पूजा करने में लगे हुए मुझको सदा स्थान दीजिए।

दासधाम्नि विनियोजितोऽप्यहं
स्वेच्छयैव परमेश्वर त्वया।
दर्शनेन न किमस्मि पात्रितः
पादसंवहनकर्मणापि वा ॥१०॥

अर्थः—हे परमेश्वर! आपने अपनी अनुग्रहशक्ति से ही मुझे अपने दास की पदवी पर लगा दिया है। फिर क्या बात है कि अपने दर्शन और चरण-कमल दबाने के काम के लिए भी पात्र नहीं बनाते।

शक्तिपातसमये विचारणं
प्राप्तमीश न करोषि कर्हिचित्।

अद्य मां प्रति किमागतं यतः
स्वप्रकाशनविधौ विलम्बसे ॥११॥

अर्थः—हे अपनी इच्छा में स्वतन्त्र प्रभो! मुझपर शक्तिपात (अनुग्रह) करने के समय आपको विचार करना चाहिए था (कि मैं पात्र हूँ या नहीं), किन्तु आप कभी ऐसा करते ही नहीं। आज मुझपर ऐसी क्या आ पड़ी है जो अपने चित्प्रकाश की झलक दिखाने में देर लगाते हो।

तत्र तत्र विषये बहिर्विभा-
त्यन्तरे च परमेश्वरीयुतम्।
त्वां जगत्त्रितयनिर्भरं सदा
लोकयेय निजपाणिपूजितम् ॥१२॥

अर्थः—(मेरी प्रार्थना है कि) मैं बाहर (जगत् में) और भीतर (चित्त में) सभी विषयों में परा-शक्ति देवी से युक्त भासमान और तीनो लोकों से परिपूर्ण आपको अपने हाथों से पूजा करते हुए ही सदा (समाधि में भी और व्युत्थान में भी) देखता रहूँ।

स्वामिसौधमभिसन्धिमात्रतो
निर्विबन्धमधिरुह्य सर्वदा।
स्यां प्रसादपरमामृतासवा-
पानकेलिपरिलब्धनिर्वृतिः ॥१३॥

अर्थः—(और) मैं अपनी इच्छा से ही (जब भी चाहूँ) आप प्रभु के महल (शाक्त पद) पर बिना रोक-टोक के चढ़कर आपके अनुग्रह से समावेश-रूप अति उत्तम अमृत-मधु को पीने की क्रीड़ा से सदा ही आनन्द-परिपूर्ण बना रहूँ।

यत्समस्तसुभगार्थवस्तुषु
स्पर्शमात्रविधिना चमत्कृतिम्।
तां समर्पयति तेन ते वपुः
पूजयन्त्यचलभक्तिशालिनः ॥१४॥

अर्थः–जिस पारमार्थिक युक्ति से आप चिद्रूप से अभिन्न जानकर सुन्दर प्रयोजन वाली सभी वस्तुओं में केवल स्पर्श (प्राथमिक आलोचन) से हो अलौकिक स्वात्म-चमत्कार प्राप्त होता है, उसी युक्ति से आपकी अचल भक्ति से सुशोभित भक्त-जन आपके स्वरूप की पूजा करते हैं।

स्फारयस्यखिलमात्मना स्फुरन्
विश्वमामृशसि रूपमामृशन्।
यत्स्वयं निजरसेन घूर्णसे
तत्समुल्लसति भावमण्डलम् ॥१५॥

अर्थः–आप अपने चिद्रूप में भासमान होते ही सारे जगत् को विकास में लाते हो (यह आपकी स्थिति-मुद्रा है); अपने स्वरूप का चमत्कार करते ही इसे अपनी आनन्दघनता में लय करते हो (यह आपकी संहार मुद्रा है) और जब अपनी ही इच्छा से अपने चिदानन्द-रस में घूमने लगते हो तभी तो यह (सारा जगत्) आनन्द से प्रकट होता है, (यह आपकी सृष्टि मुद्रा है)।

योऽविकल्पमिदमर्थमण्डलं
पश्यतीश निखिलं भवद्वपुः।
स्वात्मपक्षपरिपूरिते जगत्यस्य
नित्यसुखिनः कुतो भयम् ॥१६॥

अर्थः–हे स्वतन्त्र प्रभो! जो भक्त इस सारे जगत् को निर्विकल्प-भाव (भैरवी अथवा शाम्भवी मुद्रा) से आप चिद्रूप का ही स्वरूप देखता है, संसार में आत्म-स्वरूप से परिपूर्ण बने हुए उस सदा सुखी (भक्त) को किससे भय हो सकता है। (अर्थात् ऐसे भक्त को जन्म-मरण का भय कभी होता नहीं)।

कण्ठकोणविनिविष्टमीश ते
कालकूटमपि मे महामृतम्।
अप्युपात्तममृतं भवद्वपु-
र्भेदवृत्ति यदि रोचते न मे ॥१७॥

अर्थः–हे स्वामी! आपके गले के कोने में पड़ा हुआ कालकूट (हालाहल) विष भी (आप से अभिन्न होने की स्थिति में) मेरे लिए बहुत बड़ा अमृत है। (परन्तु) आपके स्वरूप से भिन्न होकर यदि अमृत भी मिले तो वह मुझे रुचता नहीं।

त्वत्प्रलापमयरक्तगीतिका-
नित्ययुक्तवदनोपशोभितः।
स्यामथापि भवदर्चनक्रिया-
प्रेयसीपरिगताशयः सदा ॥१८॥

अर्थः–(मैं प्रार्थना करता हूँ कि) मैं आप चित्स्वरूप के कथामृत से पूर्ण मधुर गीतों में सदा लगे हुए (इस प्रकार) शोभायुक्त मुखवाला और आपकी पूजा-क्रिया रूपिणी परमप्रिया के स्वरूप को पूर्ण रूप से जानने वाला सदा बना रहूँ।

ईहितं न बत पारमेश्वरं
श्यक्यते गणयितुं तथा च मे।

दत्तमप्यमृतनिर्भरं वपुः
स्वं न पातुमनुमन्यते तथा ॥१९॥

अर्थः–आश्चर्य है! परमेश्वर की करनी समझी नहीं जा सकती क्योंकि अपने स्वरूप से भरा हुआ चिदानन्द-रस मुझे पीने के लिए देकर भी उसे मेरी इच्छा के अनुसार ही लगातार (व्युत्थान में भी) पीने देना नहीं मानते।

त्वामगाधमविकल्पमद्वयं
स्वं स्वरूपमखिलार्थघस्मरम्।
आविशन्नहमुमेश सर्वदा
पूजयेयमभिसंस्तुवीय च ॥२०॥

अर्थः–हे उमापति! आप अपार, निर्विकल्प और भेदरहित स्वात्म-स्वरूप हैं और सभी भेद-वर्ग को निंगल डालने वाले हैं। (मेरी चाह है कि) मैं आप चिद्रूप में समावेश करते हुए सदा ही आपकी पूजा करता रहूँ और दिल खोलकर स्तुति (परामर्श) करता रहूँ, (जो समाधि और व्युत्थान, दोनों अवस्थाओं में बना रहे)।

इति श्रीमदुत्पलदेवविरचितं संग्रहस्तोत्रम्॥

उत्पलदेवुन कोशुर संग्रहस्तोत्र

(कश्मीरी में पद्यानुवाद)

परिपूरण ही चि़त-घन निर्गुण अमरेश्वर!
जय शंकर जय शंकर, जय शंकर भय हर ॥ वखनयं ॥

सुख क्या छुम त दुख क्या छुम छोट वनहय् ईश्वर
तिय बोज़्तम् वार पाठीय छुक् पान करुणाकर।
सुख यि च्यय् सूत्य मिलचा़र छुम् दुख च्यय् निश दूर्यर्
जय शंकर जय शंकर, जय शंकर भय हर ॥१॥

छुम् योदवय् ज़ाव्युल ति मल यव द्रेण्ठमान छुक् न म्यय्
तत् फेष् दिम चो़वापार्य छुक् च़ शरणन हुन्द् दय।
नोन् बनिथ् भावुम् पनुन् रूप युस् निर्मल त निज़्वर, ज०॥२॥

सोरुय् ज़गथ् चोनुय् रूप् च्यत-अमर्यत् अक्षय्
तथ्य मंज़ थ्यत् प्राविथ् बय न्यथ पूज़ा करहय।
पत आस्यतन् ज़्योन या मरुण नत आस्यतन मूक्ष-वर, ज० ॥३

'छुस् ब ईश्वर, रूपवान् छुस्, पण्डिथा छुस् सुन्दर,
ज़गतस् मंज़ शूभवुन युथ् छा म्य हयू कांह बराबर।'
राग चाने ज़ाग ह्यथ यहय् रागी बनान् अमर, ज० ॥४॥

त्यलि देवादिदेव ! अज़ान म्यति कास भास अद्वय,
प्रथ ज़ाञ मंज़ जाञरावतम् पननुय रूप अव्यय।
सन्मुख् पादिकमलन हंजि पूजायि हुन्द दिम वर, ज० ॥५॥

युथजि पानय ध्यान धारहथ पाञ पानय वुछहथ,
पाञ पानय नाल रटहथ्, बड यि पूज़ा कर न्यथ्।
चानि अनुभाव अनुभवरथ, सुय अनुग्रह म्यति कर, ज० ॥६॥

ज़गतस मंज कांह पदार्था चानि सत्तायि छुन ब्योन्
चाञ पूज़ा बोड़ उत्सव, यलि टोठान भक्त्यन्।
यिम छे दुनवय कथ शूभान तिमनय यिम गय पर्, ज० ॥७॥

चानि पूजायि हन्दि अमर्यत-रस मस-खास्य भर्य भर्य
सर्वभावनायि हन्दय पूरिथ, सर्व-साक्षात् कर्य कर्य।
इन्द्रिय-मुखवय च्यय मोत रोज़हा निरन्तर, ज० ॥८॥

यति जाञ मंज ब्ययि केंहति छुन, यति च़य छुक् हेरि-बुन्
स्वप्रकाश-पान वुलस्योमुत छुक् च़ पानय हन् हन्।
तथ्य ज़गत्-आनन्द-नगरियि मंज़ करहय आर्चर, ज०॥९॥

दासभावाह च्यय म्य द्युतथम् परमेश्वर! पानय
दर्शनकुय छुम अभिलाष, छम न तथ कांह आनय।
तोतिं दिज़िहेम पादिकमलन सीव करनुक अवसर, ज०॥१०॥

शक्तिपात विज़ि ज़ांह ति मा प्योख् स्वरञन ही भगवन्!
अज़ क्याजि छुक खेलनावान म्यानि विज़ि अञ कतर्यन!
स्वप्रकाश पुशरावनस वेशि क्याज़ि छम यीच़ दर-दर्,
ज० ॥११॥

भासवुन रूप ज़गतस मंज़, वास करवुन मनि मंज़

विषयन मंज पर-शक्ति-रूप त्र्यन ज़गतन हंज़ संज़।
परिपूरण प्रकटयोमुत वुछहथ ब. मायायि पर, ज० ॥१२॥

चानि अनुग्रह यछ़ि सूतिय टकि खसहा बेरोक
महलखानस चानिस मंज़, चाञ मर्ज़ी चोन ज़ोक।
परम-आनन्द अमर्यत मस नच़ आनन्द निर्भर, ज० ॥१३॥

यमि युक्तियि सारय ज़ग भासान छख चि़तरूप
स्पर्शमात्रय पर्ज़नावान, ज़ाञरावान विश्वरूप।
तमि युक्तियि पूज़ान छिय चाञ ज़न च्यय अन्दर्, ज० ॥१४॥

थ्यथ् दिवान छुक ज़गतस यलि, भासान छुख चि़तरूप
लय करान छुक ज़गतस त्यलि आसान छुक सतरूप।
ग्रायि मारान आनन्दघन, उपदान छु च़राच़र, ज० ॥१५॥

युस भखत्य चोन सोरुय ज़गत पानस मंज़ डेशान
अविकल्प-भाव पानस मंज़ पाञपानय छु तोषान।
परमानन्द-घन रूज़िथ, कति तस कम्यसुन्द डर, ज० ॥१६॥

नीलकण्ठ! अखण्ड-अमर्यत हालाहल चोन छुम
चानि अनुग्रह च़्यय सूत्य यलि चि़त् रूप आस समि-सोम।
नत योदवय अमर्यत मेलि, छुमन रोच़ान अख ज़र, ज०॥१७॥

आरहति मुख नाल दिम चाञ, मायि वखनय रूप चोन
राग चाने ज़ाग ह्यथ न्यथ चि़त-आनन्द-घन म्योन।
यिछ यि पूज़ा टाठ वरिना करिना म्यति अमर, ज० ॥१८॥

चानि लीलायि परमेश्वर! ह्यकि कुस गंज़राविथ
परिपूरण रूप भाविथ क्याजि छुहम् मशराविथ।
चि़त-अमर्यत अथि थाविथ चनसय छम छांगर, ज० ॥१९॥

च़य अपार च़य निष्कल च़य छुक च़टान भेद-भूधर
न्यंगलावान सोर संसार पाञ-पानस अन्दर।
अमिय आवेश पूज़ करहय–शंकर! शिव शंकर!
जय शंकर, जय शंकर, जय शंकर भय हरज०॥२०॥

- आन्द -

अथ देवीस्तुतिः

(कश्मीर के श्री धर्माचार्यकृत पञ्चस्तवी से)

ददातीष्टान्भोगान्क्षपयति रिपून्हन्ति विपदो
दहत्याधीन्व्याधीञ्छमयति सुखानी प्रतनुते।
हठादन्तर्दुःखं दलयति पिनष्टीष्टविरहं
सकृद्ध्याता देवी किमिव निरवद्यं न कुरुते ॥१॥

अर्थः–देवी का लगातार ध्यान करने से वह चाहे हुए भोगों को देती है, शत्रुओं का नाश करती है, आपदाएं हटाती है, मन के रोगों को जलाती है, शरीर के रोगों को शान्त करती है, सुखों का विस्तार करती है, अन्तःकरण के दुःखों को अपनी इच्छा के बल से नष्ट करती है, प्यारों के वियोग को पीसती है, इस प्रकार वह कौन से दोष हैं जिनको वह दूर नहीं करती है।

अजानन्तो यान्ति क्षयमवशमन्योन्यकलहै-
रमी मायाग्रन्थौ तव परिलुठन्तः समयिनः।
जगन्मातर्जन्मज्वरभयतमः कौमुदि! वयं
नमस्ते कुर्वाणाः शरणमुपयामो भगवतीम् ॥२॥

अर्थः–हे जगन्माता! हे जन्ममरण ज्वर के भय रूपी अन्धकार को (नाश करने वाली) चाँदनी! यह सभी भिन्न-भिन्न मतवादी आपके सच्चे स्वरूप को न जानते हुए एक-दूसरे के साथ झगड़

(तर्क-वितर्क) करने के कारण आपके माया रूपी फंदे में फंसते हुए लाचार होकर (जन्ममरण रूप चक्र में पड़कर) नाश को प्राप्त होते हैं। हम आपकी शरण में आये हुए भक्त आप ऐश्वर्य से शोभायमान भगवती को नमस्कार (देहाभिमान को अर्पण) करते हुए शरण में आते हैं।

मनुष्यास्तिर्यञ्चो मरुत इति लोकत्रयमिदं
भवाम्भोधौमग्नं त्रिगुणलहरीकोटिलुठितम्।
कटाक्षश्चेदत्र क्वचन तव मातः! करुणया
शरीरी सद्योऽयं व्रजति परमानन्दतनुताम् ॥३॥

अर्थः—मनुष्य, पशु, पक्षी आदि और देवता इस प्रकार इनका यह तीन लोकों का समूह, तीन गुणों (सत्व, रज, तम) वाली करोड़ों लहरों से व्याकुल बना हुआ संसार सागर में डूबा हुआ है। हे मातः! इनमें से किसी एक पर यदि आपकी दया से अनुग्रह की दृष्टि हो, तो वह जीव उसी क्षण परमानन्द-स्वरूप को प्राप्त होता है।

पिता माता भ्राता सुहृदऽनुचरः सद्म गृहिणी
वपुः पुत्रो मित्रं धनमपि यदा मां विजहति।
तदा मे भिन्दाना सपदि भयमोहान्धतमसं
महाज्योत्स्ने मातर्भव करुणया सन्निधिकरी ॥४॥

अर्थः—हे महाप्रकाशमयी माता! जब (मरणकाल के समय) मुझे (मेरे) पिता, माता, भाई, सुहृद, नौकर, घर, पत्नी, शरीर, पुत्र मित्र और धन भी छोड़ दें, तो उस समय दया करके मेरे भय तथा मोह के अन्धकार को नाश करती हुई जल्दी ही मेरे सामने प्रकट हो जाना (अर्थात् अपने चित्स्वरूप में लीन करना)।

शिवस्त्वं शक्तिस्त्वं त्वमसि समया त्वं समयिनी
त्वमात्मा त्वं दीक्षा त्वमयमणिमादिर्गुणगणः।
अविद्या त्वं विद्या त्वमसि निखिलं त्वं किमपरं
पृथक्तत्त्वं त्वत्तो भगवति! न वीक्षामह इमे ॥५॥

अर्थः-हे भगवती! आप ही शिवरूप हो, शक्तिरूप हो, सिद्धान्तरूप हो, सिद्धान्त बनाने वाली हो, आत्मा हो, उपदेशरूप हो और यह अणिमादि सिद्धियां हो। आप ही गुणों का समूह हो, अज्ञान (माया) रूप हो, ज्ञानरूप चित्स्वरूपभाव को प्रकट करने वाली माया-शक्ति हो और सभी कुछ आप ही हो। कौन-सा तत्व आप से भिन्न है, हम इस बात को नहीं जानते हैं।

असंख्यैः प्राचीनैर्जननि जननैः कर्मविलया-
दगते जन्मन्यन्तं गुरुवपुषमासाद्य गिरिशम्।
अवाप्याज्ञां शैवीं क्रमतनुरपि त्वां विदितवा-
न्नयेयं त्वत्पूजास्तुतिविरचनेनैव दिवसान् ॥६॥

अर्थः-हे माता! (मेरी प्रार्थना है कि) मैं पिछले अनगिनत जन्मों द्वारा कर्मों के नष्ट होने से, इन जन्मों के अन्त होने पर (जीवन्मुक्त दशा में) गुरु-स्वरूप शिव को प्राप्त करके शिवरूप सिद्धान्त (चक्रेश्वरी रहस्य क्रम) पाकर अर्थात् उसका मनन और निधिध्यासन कर मनुष्य शरीर धारण करता हुआ भी आपको जानता रहूँ और आपकी पूजा करने तथा स्तुति रचने में ही इस जन्म के बाकी दिन बिता दूँ।

(श्रीमदाद्य शंकराचार्यकृत सौन्दर्यलहरी से-)

त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगतण-

स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया।
भयात्त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं
शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ ॥७॥

अर्थः–हे तीनों लोकों को शरण देने वाली (माता!) आपके सिवाय दूसरे सब देवता-गण दोनों हाथों से अभिनय कर अभयदान और वरदान देते हैं। आप ही ऐसी हैं जो अभयदान और वरदान देते समय हाथों से अभिनय नहीं करती। भय से रक्षा करने में और इच्छा के अनुकूल फल देने में आपके दो चरण ही निपुण हैं।

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटी परिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मंचे परमशिवपर्यङ्क निलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम् ॥८॥

अर्थः–अमृत के समुद्र बीज, कल्पवृक्षों की वाटिका से घिरे हुए मणि द्वीप में, नीप (कदम्ब) वृक्षों के उपवन के बीच चिन्तामणियों के बने घर में, त्रिकोण मंच पर, परमशिव के पलंग पर विराजमान चिदानन्दलहरी-स्वरूप आपका कोई विरले ही मनुष्य भजन (चित्स्वरूप के साथ एक होने का चिन्तन) करते हैं; वे धन्य हैं।

भवानि! त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणा-
मिति स्तोतुं वाञ्छन् कथयति भवानि त्वमिति यः।
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्यपदवीं
मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमुकुटनीराजितपदाम् ॥९॥

अर्थः–हे भवानी! 'मुझ दास पर भी आप अपनी करुणाभरी दृष्टि डाल' इस प्रकार जो मुमुक्षु स्तुति करते समय 'मैं तू हो जाऊँ'

(भवानि त्वं) इस पद का ही उच्चारण कर पाता है, उसे आप अपना (वह) सायुज्यपद (ब्रह्मात्मैक्य–जीव-ब्रह्म एकता) प्रदान करती हो जिसकी ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र अपने मुकुटों के प्रकाश से आरती उतारा करते हैं।

श्रीदुर्गासप्तशती से–विश्व की रक्षा के लिए प्रार्थना:–

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्व लक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥१०॥

अर्थ:–पुण्यात्माओं के घरों में स्वयं ही लक्ष्मीरूप से, पापियों के यहाँ दरिद्रतारूप से, शुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुषों के हृदय में बुद्धिरूप से, सत्पुरुषों में श्रद्धारूप से और कुलीन मनुष्य में लज्जारूप से निवास करती हैं, उस आप भगवती दुर्गा को हम नमस्कार (चिद्रूप में एकता का अनुभव) करते हैं। हे देवि! आप सम्पूर्ण विश्व का पालन कीजिए–अपने चिदानन्द स्वरूप का ज्ञान हम में प्रकट कीजिए।

(पञ्चस्तवी से)

शब्दब्रह्ममयि स्वच्छे देवी त्रिपुरसुन्दरि!
यथाशक्ति जपं पूजां गृहाण परमेश्वरि ॥११॥

अर्थ:–अनाहत शब्द स्वरूपा! (तीनों मलों से रहित) निर्मल चित्स्वरूपा! स्वयंप्रकाशरूपा! तीनों अवस्थाओं में व्यापक सुन्दरि! परमेश्वर की स्वातन्त्र्य शक्ति! जैसी थोड़ी बहुत मेरी शक्ति है वैसे इस मेरे जप और पूजा को ग्रहण कीजिए।

नन्दन्तु साधकाः सर्वे विनश्यन्तु विदूषकाः।
अवस्था शाम्भवी मेऽस्तु प्रसन्नोऽस्तु गुरुः सदा ॥१२॥

अर्थः—सभी मोक्ष चाहने वाले साधक सुखी रहें। आत्मा को दूषित बनाने वाली वृत्तियां नष्ट हों। मुझे शिवस्वरूपिणी अवस्था प्राप्त हो। मेरे गुरुदेव मुझपर सदा अनुग्रह करते रहें।

न जानामि ध्यानं तव चरणयोः प्रीतिजननं
न जानामि न्यासं मननमपि मातर्न गिरिजे!
तदेतद्क्षन्तव्यं न खलु सत्त्वरोषा समुचित
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥१३॥

अर्थः—हे गिरिजा! आपके ज्ञान-क्रिया रूप चरणों में प्रीति (निरन्तर चिन्त रूप भक्ति) उत्पन्न करने वाली ध्यान की युक्ति मैं नहीं जानता हूँ, न न्यास (आत्मसमर्पण रूपा प्रपत्ति-विद्या) जानता हूँ और न ही आपके चित्स्वरूप के मनन की युक्ति ही प्राप्त है। इसके लिए आप मुझे क्षमा करें क्योंकि आपको मुझ (भक्त) पर क्रोध करना उचित नहीं है। कुपुत्र तो पैदा हो सकता है परन्तु माता कभी भी अपने सन्तान पर उल्टा नहीं करती।

इति श्रीदेवीस्तुतिः

गौरीस्तुतिः

श्रीमदाद्य शंकराचार्यकृत

लीलारब्ध-स्थापित-लुप्ताखिललोकां
लोकातीतैर् योगिभिरन्तर्-हृदि मृग्याम्।
बालादित्य-श्रेणि-समान-द्युति-पुंजां
गौरीं अम्बां अम्बुरुहाक्षीं अहं ईडे ॥१॥

अर्थः—मैं कमल-नेत्र जगदम्बा पार्वती की स्तुति करता हूँ, जो लीला से ही सब लोकों की उत्पत्ति, स्थिति और लय करती हैं जिसको असाधारण बुद्धि वाले योगी अपने हृदय में खोजने के यत्न में लगे रहते हैं, और जिसका तेज अनन्त प्रभात-सूर्यों के (आह्लाद-दायक) प्रकाश के समान है।

आशा-पाश-क्लेश-विनाशं विदधानां
पादाम्भोज-ध्यान-पराणां पुरुषाणाम्।
ईशीं ईशार्धाङ्गहरां तां तनुमध्याम्, गौरीं०॥२॥

अर्थः—परमेश्वर की जो अर्धाङ्गिनी ईश्वरी हैं, जो हर एक जीव की मध्यनाड़ी में परम सूक्ष्मरूप से और बाहर से विश्व में अणुरूप से रहती हैं और जो (अपने) चरण-कमलों के ध्यान में लगे हुए पुरुषों की आशाओं की फाँसी के कष्ट को मिटाती हैं, उस जगत्-माता गौरी को मैं प्रणाम करता हूँ।

प्रत्याहार-ध्यान-समाधि-स्थिति-भाजां
नित्यं चित्ते निर्वृति-काष्टां कलयन्तीम्।
सत्यज्ञानानन्दमयीं तां अभिवन्द्याम्[1] गौरीं०॥३॥

अर्थः—प्रत्याहार, ध्यान, समाधि (पातंजल योग दर्शन के अष्टांग-योग के अन्तरङ्ग नियमों) के पालन करने वाले मनुष्यों के चित्त में समाधि-सुख की पराकाष्टा उत्पन्न कराने वाली सत् चित्-आनन्द स्वरूप वाली और वन्दना की जाने वाली जगन्माता गौरी को मैं प्रणाम करता हूँ।

चन्द्रापीडानन्दित-मन्द-स्मित-वक्त्रां
चन्द्रापीडालङ्कृत-लोलालकभाराम्।
इन्द्रोपेन्द्राभ्यर्चित-पादाम्बुज-युग्मां, गौरीं०॥४॥

अर्थः—चन्द्रमा जिसका शिरोभूषण है ऐसे भगवान् शंकर से हर्षित होकर मन्द मुस्कान से भरे मुखवाली (पार्वती), जिसके केश-पाश सिर के भूषण बने चन्द्रमा से सुशोभित हैं और जिसके चरण-कमलों की जोड़ी की पूजा इन्द्र और भगवान् विष्णु करते हैं, उस कमल-नेत्र गौरी की मैं स्तुति करता हूँ।

नानाकारैः शक्ति-कदम्बैर्भुवनानि
व्याप्य स्वैरं क्रीडति यासौ स्वयमेव।
कल्याणीं तां कल्पलतामानति-भाजां, गौरीं०॥५॥

अर्थः—जो नाना रूप वाली अपनी अनन्त शक्तियों से सारे भुवनों में व्याप्त है और अपनी ही इच्छा से (सृष्टि, स्थिति और

---

१. पाठान्तर—अभिरामाम्।

संहार का) खेल रचाती है, जो शरण में आये हुए भक्तजनों के लिए मङ्गल-स्वरूप है और कल्प-वृक्ष की बेल के समान उनके सब मनोरथों को सिद्ध करने वाली है उस कमल-नेत्र माता गौरी को मैं प्रणाम करता हूँ।

मूलाधारात् उत्थितवन्तीं विधिरन्ध्रं
सौरं चान्द्रं धाम विहाय ज्वलिताङ्गीम्।
ध्येयां सूक्ष्मां सूक्ष्मतनुं तां तडित् आभां, गौरीं०॥६॥

अर्थः-जो कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार से (अभ्यास द्वारा जगाने से) उदय करके (इडा-पिंगला अथवा प्राण-अपान रूप) सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाशों को पार करके ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार) में जगमगाती है, जो बिजली की भाँति सूक्ष्म से सूक्ष्मतर स्वरूपवाली है और जिसका योगीजन ध्यान करते हैं उस कमल-नेत्र गौरी की मैं वन्दना करता हूँ।

आदिक्षान्ताम् अक्षरमूर्त्या विलसन्तीं
भूते भूते भूत-कदम्बं प्रसवित्रीम्।
शब्दब्रह्मानन्दमयीं तां प्रणवाख्यां, गौरीं०॥७॥

अर्थः-जो (परा शक्ति) वर्णमाला के अ से क्ष तक अक्षरों की मूर्तियों (मातृका-चक्र) से विकसित हुई है, जो आकाश, वायु आदि पंच-महाभूतों में नाना प्रकार की स्थावरजङ्गम सृष्टि को उत्पन्न करती है और जो शब्द-ब्रह्म अर्थात् अनाहत शब्द स्वरूपा है, जिसका वाचक ओंकार (प्रणव) है, उसी कमल-नेत्र माता गौरी की मैं वन्दना करता हूँ।

यस्याः कुक्षौ लीनम् अखण्डं जगत् अण्डं

भूयो भूयः प्रादुर्-अभूत् अक्षतम्-एव
भर्त्रा सार्धं तां स्फटिकाद्रौ विहरन्तीम, गौरीं०॥८॥

अर्थः—जिसके उदर में सारा ब्रह्माण्ड लीन हुआ और फिर-फिर सम्पूर्ण रूप से प्रकट हुआ—कल्पान्त के समय अखण्ड ब्रह्माण्ड बार-बार बीज रूप से लीन होकर कल्प के आदि में ज्यों का त्यों प्रकट होता है—और जो अपने भर्त्ता भगवान् शंकर के साथ अभिन्न रूप से (सूर्य-कान्त रत्न के समान) कैलास पर्वत पर (—जीव के सहस्रार में) लीला करने वाली है उस सुन्दर माता पार्वती की मैं स्तुति करता हूँ।

नोटः—'विहरन्तीं' का पाठान्तर 'अभिरामां' है जिसका अर्थ है 'बहुत सुन्दर स्वरूप वाली'।

यस्याम् एतत् प्रोतम् अशेषं मणिमाला
सूत्रे यद्वत् क्वापि चरं क्वाप्यचरं च।
तां अध्यात्म-ध्यान पदव्या गमनीयां, गौरीं०॥९॥

अर्थः—जिस (संवित्-शक्ति) में यह सारा स्थावरजङ्गम रूप जगत् तागे में पिरोए हुए मणियों की माला के समान ठहरा हुआ है और जिसका साक्षात्कार आत्म-ज्ञान द्वारा ही होता है उसी सुन्दर-स्वरूप माता गौरी को मैं प्रणाम करता हूँ।

नित्यः सत्यो निष्कल एको जगत् ईशः
साक्षी यस्याः सर्ग-विधौ संहरणे च।
विश्वत्राण-क्रीडन-शीलां शिव-पत्नीं, गौरीं०॥१०॥

अर्थः—जिस (लीलामयी माँ) की सृष्टि रचने की विधि तथा संहार करने की क्रिया का देखने वाला (साक्षी), अवयव-रहित,

सत्य-स्वरूप और नित्य-वस्तु केवल परमेश्वर ही है और जो अपनी इस क्रीड़ा में जगत् पर उपकार करने की स्वभाव वाली, भगवान् शिव की अर्धाङ्गिनी (स्वतन्त्र-शक्ति) है उस सुन्दरता-स्वरूपा माता पार्वती को मैं प्रणाम करता हूँ।

प्रात: काले भावविशुद्धः प्रणिधानात्
भक्त्या नित्यं जल्पति गौरीदशकं य:।
वाचां सिद्धिं सम्पदम् उच्चै: शिव भक्तिं
तस्यावश्यं पर्वत पुत्री विदधाति, गौरीं०॥११॥

अर्थ:-जो भक्त-जन प्रतिदिन प्रात:काल के समय शुद्ध अन्त:करण हो भक्ति से और शरणागति से गौरीस्तुति: के दस श्लोकों का पाठ (अर्थ-चिन्तन से) करता है उसको माता पार्वती अवश्य ही वाक्-सिद्धि, संपदा और परमशिव की उत्तम भक्ति प्रदान करती हैं।

इति गौरीस्तुति:

अथ जयस्तुतिः

जय नारायण! जय पुरुषोत्तम!
जय वामन! कंसारे!
उद्धर मामऽसुरेशविनाशिन्! पतितोऽहं संसारे!
घोरं हर मम नरकरिपो! केशव! कल्मषभारं
मामऽनुकम्पय दीनमऽनाथं कुरु भवसागरपारम् ॥१॥

अर्थः—हे नारायण! हे पुरुषोत्तम! हे वामन का अवतार धारण करने वाले भगवान् विष्णु! हे कंस का नाश करने वाले भगवान् कृष्ण! हे राक्षसों के स्वामी का नाश करने वाले भगवान्! मैं संसार रूपी समुद्र में डूबा हुआ हूँ (इस संसार-समुद्र से) मुझे उबार लो! हे नरक से छुटकारा दिलाने वाले भगवान्! हे केशव! मेरे पापों के बड़े बोझ को दूर करो। मुझ (संसार भय से) दीन और अनाथ पर दया करके मुझे इस संसार-सागर के पार उतारो।

जय जय देव! जयाऽसुरसूदन!
जय केशव! जय विष्णो!
जय लक्ष्मीमुखकमलमधुव्रत!
जय दशकन्धर जिष्णो ॥२॥

अर्थः—हे स्वयं प्रकाश देव! असुरों का नाश करने वाले! केशव! सर्वव्यापक! लक्ष्मी के मुख-कमलरूप मिठास को वर्णन करने वाले अर्थात् लक्ष्मीपति! हे रावण को जीतने वाले राम! आपको बारम्बार जयकार हो।

त्वं जननी जनकः प्रभुरच्युत! त्वं पुत्रसुहृद्धनमित्रम्।

त्वं शरणं शरणागतवत्सल! त्वं भवजलधिवहित्रम् ॥३॥

अर्थः–अपने स्वरूप से विचलित न होने वाले विष्णु अच्युत! तुम (ही मेरे) माता, पिता और स्वामी हो। तुम ही मेरे (सच्चे) पुत्र, सुहृत् और मित्र हो। हे शरण में आये हुए (भक्तों के) प्यारे भगवान्! तुम ही रक्षा करने वाले हो। तुम ही संसार-समुद्र से पार उतारने वाले हो।

पुनरऽपि जननं पुनरऽपि मरणं पुनरऽपि गर्भनिवासं।
सोढुमऽलं पुनरऽस्मिन्माधव! मामुद्धर निजदासम् ॥४॥

अर्थः–हे लक्ष्मीपति (माधव)! इस (संसार) में मैंने बार-बार जन्म लेने, बार-बार मरने और बार-बार गर्भ में रहने (का कष्ट), इस प्रकार सब दुःख अब सह लिए। (अब इन कष्टों को सहन नहीं कर सकता हूँ, अतः) मुझ अपने दास का उद्धार करो।

जनक सुतापति चरणपरायण, शंकरमुनिवरगीतं।
धारय मनसि कृष्ण! पुरुषोत्तम! वारय संसृतिभीतिम् ॥५॥

अर्थः–हे कृष्ण! हे पुरुषोत्तम! भगवान् राम के चरणों में शरण आए हुए शंकर मुनि की गाई हुई (यह) उत्तम स्तुति मन में धारण करो (अर्थात् इस स्तुति की ओर ध्यान दो) और वह संसार भय (मुझ से) दूर करो।

यद्यपि सकलमऽहं कलयामि हरे!
नहि किमऽपि ससत्वं।
तदऽपि न मुञ्चति मामिदमऽच्युत!
पुत्रकलत्रममत्वम् ॥६॥

अर्थः–हे हरि! यद्यपि यह सब (मेरी स्तुति) मधुर और

अस्पष्ट, इसमें दृढ़ता नहीं है, तो भी हे अच्युत! स्त्रीपुत्रादि में मेरी ममता मुझे नहीं छोड़ती! अर्थात् हे भगवान्! यद्यपि मेरी यह स्तुति मधुर है और अस्पष्ट होने के कारण ममता-मोह नहीं छूटता, तथापि आत्म-भाव के दृढ़ होने पर यह मोह मुझे छूट जायेगा। यह मेरी पूर्ण धारणा है।

इति शंकरभगवता कृता जयस्तुतिः ॥

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं
स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः।
संसर्गदोषरहिता विजना वनान्ता
वैराग्यमस्ति किमतः परमर्थनीयम् ॥७॥

(भर्तृहरिः)

अर्थः—सदाशिव की भक्ति हो, जन्ममरण का भय हृदय में हो, बन्धुवर्ग में आसक्ति न हो (जिससे भगवत्स्मरण में बाधा पड़े), कामदेव का विकार मन से दूर हो, संगदोष से छूटे निर्जन वन (अर्थात् निर्मल चित्त से भगवत्स्मरण) में बैठे हों, इस से अधिक और क्या वैराग्य है जो ईश्वर से माँगने योग्य है अर्थात् यही वैराग्य है।

शिवस्तुतिः

श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यकृता
(भैरवस्तुतिः)

व्याप्तचराचरभावविशेषं
चिन्मयमेकमनन्तमनादिम्।
भैरवनाथमनाथशरण्यं
तंन्मयचित्ततया हृदि वन्दे ॥१॥

अर्थः–अनाथों के रक्षक भैरवनाथ (शिव) जो चर और अचर में विशेष भाव से व्यापक चित्स्वरूप, अद्वितीय, नाश-रहित तथा आदि-रहित हैं, उसके स्वरूप के साथ मन से एकाग्र होकर मैं वन्दना करता हूँ।

त्वन्मयमेतदशेषमिदानीं
भाति मम त्वदनुग्रहशक्त्या।
त्वं च महेश! सदैव ममात्मा
स्वात्ममयं मम तेन समस्तम् ॥२॥

अर्थः–(हे भैरव!) आपकी अनुग्रह-शक्ति के फलस्वरूप मुझे यह सारा जगत् इस समय आपके स्वरूप से अभिन्न दीख पड़ता है। हे महेश! आप प्रभु सदा (अर्थात् तीनों अवस्थाओं में) मेरे ही आत्मा हो। अतः यह सारा संसार मुझे स्वात्ममय (अपना स्वरूप) दिखाई देता है।

स्वात्मनि विश्वगते त्वयि नाथे
तेन न संसृतिभीतिः कथाऽस्ति।
सत्स्वपि दुर्धरदुःखविमोह
त्रासविधायिषु कर्मगणेषु ॥३॥

अर्थः–भय देने वाले प्रारब्धादि कर्म मुझे कठोर दुःख देते हैं और मोह में डालते हैं। ऐसा होने पर भी (मैं) आप स्वामी के व्यापक विश्वरूप के साथ एकता का अनुभव करता हूँ। इसलिए (मेरे लिए) संसार के (इस) भय की कोई वार्ता नहीं।

अन्तक! मां प्रति मा दृशमेतां
क्रोधकरालतमां विदधीहि।
शङ्करसेवनचिन्तनधीरो
भीषणभैरव शक्तिमयोऽस्मि ॥४॥

अर्थः–हे महाकाल! मेरे ऊपर भयानक क्रोध से ऐसी अत्यन्त विकराल दृष्टि न डाल, क्योंकि भगवान् शंकर (भैरव) की सेवा (पूजा) तथा चिन्तन (ध्यान) करने से मैं धैर्यवान् बना हूँ। (अतः तुम्हें) भय देने वाली भैरव-शक्ति से मैं सम्पन्न हूँ।

इत्थमुपोडभवन्मय संविद्-
दीधितिदारित भूरितमिस्त्रः।
मृत्युयमान्तक कर्मपिशाचै-
र्नाथ नमोऽस्तु न जातु बिभेमि ॥५॥

अर्थः–हे नाथ! इस प्रकार आपकी ज्ञानशक्ति (संवित्) उपवाहित (बिल्कुल अपने समीप) है। उस से फाड़ा हुआ यह (अज्ञान-रूप) घना अन्धकार नष्ट हो जाता है। (अतः) मैं पिशाच-कर्म (कपट) से

भरे (आपके ही तीन रूप) मृत्यु, यम (मृत्यु-प्राप्ति) और अन्तक (महाकाल) से थोड़ा भी नहीं डरता। (हे जगदीश) आपको नमस्कार हो।

प्रोदितसत्यविबोधमरीचि
प्रोक्षितविश्वपदार्थसतत्त्वः।
भावपरामृतनिर्भरपूर्णे
त्वय्यऽहमात्मनि निर्वृतिमेति ॥६॥

अर्थः–इस प्रकार आपके उदयशील सत्यस्वरूप तथा ज्ञानस्वरूप किरणों से समस्त संसार के सारे पदार्थों का सिंचन होता है, जिससे आपके अहंस्वरूपभाव रूपी परम अमृत से परिपूर्ण (आप) भैरवनाथ में मेरी आत्मा एकरूप हुई है। (अतः) मुझे शान्ति मिली है।

मानसगोचरमेति यदैव
क्लेशदशाऽतनुतापविधात्री।
नाथ! तदैव ममत्वदभेद-
स्तोत्रपराऽमृतवृष्टिरुदेति ॥७॥

अर्थः–हे स्वामी! जिस क्षण संसार के भारी सन्ताप (त्रिविध-तापः– १. आध्यात्मिक– इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न हुआ मानसिक दुःख २. आदिभौतिक–चोर, शेर, शत्रु आदि भूतसमुदाय से होने वाले दुःख; और ३. आदिदैविक–भूँचाल, बाढ़ आदि दैवी दुःख) मेरे मन में मुझे स्पर्श करने आते हैं, उसी क्षण मेरे में आप अभेद परमात्मतत्त्वरूपी वर्षा का उदय होता है जो इन सब सन्तापों को नष्ट कर देती है।

शंकर! सत्यमिदं व्रतदान-
स्नानतपो भवतापविनाशि।

तावकशास्त्रपराऽमृतचिन्ता
स्यन्दति चेतसि निर्वृतिधारा ॥८॥

अर्थः–हे शंकर! यह सत्य है कि व्रत रखने से, दान देने से, स्नान करने से तथा तपस्या करने से संसार के दुःख नष्ट हो जाते हैं। परन्तु आपके अद्वैत शास्त्रों के चिन्तन (श्रवण, मनन और निधिध्यासन) करने से संसार में आनन्द की धारा बहती है।

नृत्यति गायति हृष्यति गाढं
संविदियं मम भैरवनाथ!
त्वां प्रियमाप्य सुदर्शनमेकं
दुर्लभमन्यजनैः समयज्ञम् ॥९॥

अर्थः–हे भैरवनाथ! आप प्यारे और सुन्दर दर्शन वाले अद्वितीय-स्वरूप को (जो अनुपम है) पाकर मेरी यह ज्ञान-शक्ति (संवित्) अधिक रूप में प्रसन्न होती है। (परन्तु) अभक्तों के लिए (यह अवस्था) दुर्लभ है।

वसुरसपौषे कृष्णदशम्या-
मभिनवगुप्तः स्तवमिदमकरोत्।
येन विभुर्भवमरुसन्तापं
शमयति झटिति जनस्य दयालुः ॥१०॥

अर्थः–वसु (आठ), रस (छः), पौष (नौ) मास के कृष्णपक्ष की दशमी (अर्थात् संवत् ९६८) को महेश्वराचार्य अभिनवगुप्त ने यह स्तुतिः रची, जिसके विमर्श से भगवान् शंकर (भैरव) मरुस्थल रूपी सन्ताप (तीनों प्रकार के दुःख) क्षणमात्र में नष्ट कर देते हैं।

इति श्री अभिनवगुप्ताचार्यकृता शिवस्तुतिः॥

अथ चामरार्थं शिवस्तुतिः

अतिभीषणकटुभाषणयमकिङ्करपटली
कृतताडनपरिपीडन मरणागमसमये।
उमया सह मम चेतसि यमशासन निवसन्
शिवशंकर शिवशंकर हर मे हर दुरितम् ॥१॥

अर्थः—हे यमराज पर शासन करने वाले और कल्याणकर शिव! मरणकाल आने के समय जब यमकिंकरों का समूह बहुत भयानक और कठोर भाषणों से ताडन करते हुए मुझे पीड़ा देते हों उस समय भगवती उमा के साथ मेरे मन में निवास करते हुए मेरे पापों का नाश कर दो।

अतिदुर्नयचटुलेन्द्रिय रिपुसञ्चयदलिते
पविकर्कशकटुजल्पितखलगर्हणचलिते।
शिवया सह मम चेतसि शशिशेखर निवसन्
शिवशंकर शिवशंकर हर मे हर दुरितम् ॥२॥

अर्थः—हे सिर पर चन्द्रमा धारण करने वाले शिव! बहुत ही बुरी तरह ढीले बने हुए इन्द्रियों को विषयरूपी शत्रुओं से दबाये जाने पर, कठोर वज्र, कठिन बातों से तथा दुष्टों की निन्दा से चंचल (दुःखी) होने पर, भवानी शिवा के साथ मेरे मन में निवास करते हुए मेरे पापों का नाश कर दो।

भवभञ्जन सुररञ्जन खलवञ्चन पुरहन्
दनुजान्तक मदनान्तक रविजान्तक भगवन्।

गिरिजावर करुणाकर परमेश्वर भयहन्
शिवशंकर शिवशंकर हर मे हर दुरितम् ॥३॥

अर्थः—हे भगवन्! संसार-भय को हटाने वाले! देवताओं को प्रसन्नता देने वाले! दुष्टों को भगाने वाले, पुर राक्षस को मारने वाले! दनुज, कामदेव और रविज के महाकाल! पार्वति-पति! विघ्नभय दूर करने वाले दयाशील परमेश्वर! कल्याण-स्वरूप शिव! मेरे पापों को दूर कर दे।

शक्रशासन कृतशासन चतुराश्रमविषये
कलिविग्रहभवदुर्ग्रहरिपुदुर्बलसमये।
द्विजक्षत्रियवनिताशिशु दरकम्पित हृदये
शिवशंकर शिवशंकर हर मे हर दुरितम् ॥४॥

अर्थः—इन्द्र पर शासन करने वाले! सत्ययुग के शासक! चार आश्रमों में कलियुग के झगड़ों, संसार के उल्टे ग्रहों और शत्रुओं के कारण दुर्बलता के समय जब-जब ब्राह्मण, क्षत्रिय, स्त्री, पुत्र के भय से हृदय कांप रहा हो, हे कल्याण करने वाले शिव! उस समय मेरे पापों का नाश कर दो।

भवसम्भवविविधामयपरिपीडितवपुषं
दयितात्मजममताभरकलुषीकृतहृदयम्।
कुरु मां निजचरणार्चितनिरतं भव सततं
शिवशंकर शिवशंकर हर मे हर दुरितम् ॥५॥

अर्थः—हे भव! (संसार को रचने वाले भगवान्) संसार से पैदा हुए नाना प्रकार की पीड़ाओं से पीड़ित शरीर वाले, तथा अभीष्ठ संतान की अधिक ममता से कलुषित हुए हृदय वाले मुझको सदा

अपने चरणों की पूजा में ही निरन्तर लगा दो। हे कल्याणमय शिव! मेरे दृष्कृत को दूर कर दो।

इति चामरार्थं शिवस्तुतिः॥

इति शम्

अद्भुत दीप

हृद्गुहागहनगेहगूहितं भासिताखिलजगत्त्रयोदरम्।
कन्दकन्दरदरीमुखोद्गतप्राणमारुतकृतस्थिरस्थितिम् ॥
त्यक्तसर्वदशमक्षयोदयं रूपवर्जितमभित्तिसंश्रयम्।
यंनिरञ्जनमनक्षगोचरं दीपमद्भुतमुशन्ति तं स्तुमः ॥१॥

अर्थ:-(ज्ञानी लोग) जिस परमात्मा को हृदयरूपी गुहा (चिदाकाश) के अतिगहन मन्दिर में गुप्त रहते हुए भी, तीनों भुवनों (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) को (स्वस्वरूप में ही) प्रकाशित करने वाला, मेढ्र से ऊपर और नाभि से नीचे (दो अंगुल स्थान के) मध्य में गुहा (कुण्डलिनी) के (समाधिकाल में सुषुम्ना नाड़ी रूप) मुँह द्वारा ऊर्ध्वगत प्राणवायु से (लौकिक दीप की तरह बुझने के बदले) सुस्थिर स्थितिवाला, बत्तियों (बाल्यकालादि अवस्थाओं) से रहित, उदय और क्षय अर्थात् चमकने और बुझने (जन्म-मरण) से रहित; (केवल अनुभवगम्य होने के कारण) रूप से रहित; (हृदाकाश में तत्त्वातीत चिन्मयस्वरूप होने से) आधार रहित, काजल (माया-अंजन) से रहित, (परमप्रमाता होने से इन्द्रिय-अगोचर, अत:) बाह्य नेत्रों से न दिखने वाला एक अद्भुत-आश्चर्यमय दीपक डिण्डोरा देकर बतलाते हैं (और अनुभव करना चाहते हैं) उस परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं।

-काश्मीरिकः महाकविजगद्धरभट्टः

परिशिष्ट-ख

पण्डित् शिव कौल कृता

आक्रन्दमानगिरया शिवस्तुतिः[1]

(रोती हुई वाणी में भक्ति-भाव से भगवान शिव की आराधना)

रे चित्त! भीत! चपल! विपुलां विहाय
चिन्तां, समाश्रय पदद्वयमार्तबन्धोः।
आक्रन्दमानगिरया परया च भक्त्या
जन्मादिदुःखशमनमभिप्रार्थयस्व ॥१॥

आर्त भक्त अपने चंचल चित्त (मन) को कहता है:-

---

१. यह सुन्दर तथा भावपूर्ण शिवस्तुति मेरे पूज्य पितामह पण्डित शिवकौल की कृति है। भगवान लक्ष्मण जू ने इसे 'अलौकिक स्तुति' कह कर सराहा है। पं० शिवकौल वैकुण्ठवास पचास वर्ष से कुछ कम आयु में, जून १९२२ ई० में हुआ था। इस तरह उनका जन्म १८७२ ई० के आप-पास हुआ होगा। उनके गुरु महाराज हरिद्वार पातञ्जलाश्रम के स्वामी तेजनाथ थे। अपने गृहस्थ का यथायोग्य निर्वाह करते हुए उन्हें मूर्तिकला तथा चित्रकला में भी रुचि थी। योगचर्या, सत्संग तथा वेदान्त श्रवण की ओर अधिक आकृष्ट थे। श्रीनगर के प्रसिद्ध विद्वद्वर्य पं० सुनकाक राज़दान से वेदान्त शास्त्रों का अध्ययन किया था। इन बातों का मुझे युवा होने पर अपनी दादी जी स्वर्गीया अमरावती से पता चला था। शिवस्तुति और माण्डूक्योपनिषद् गौडपाद कारिकाओं का कश्मीरी भाषा में पद्यानुवाद, इनकी पाण्डुलिपियां सुरक्षित हैं।

अर्थः–संसार भय से पीड़ित और चंचल बने हुए हे मेरे मन! तुम सारी चिन्ता (संसार-बन्धन में डालने वाली वासनाएं) छोड़ दो। आर्त भक्तों के (एकमात्र) बन्धु (भगवान् शिव) के चरणद्वय की शरण लो। परम भक्ति और रोती हुई वाणी में (उससे) जन्म-मरण आदि दुःख[१] शान्त करने के लिए प्रार्थना कर।

किं त्वं मुधा कथय संसरणाख्यघोरां-
गारेषु कातरतयाऽभिपचन् स्थितोऽसि ?
दैन्यं विहाय भवदुःखविमुक्तये त्वं
आराधनां कुरु शिवस्य, तथाऽत्र वक्ष्ये ॥२॥

अर्थः–ज़रा कहो, क्यों तू व्यर्थ ही संसार-चक्र नाम के जलते अंगारों में डरपोक बनकर सन्तप्त हुआ ठहरा है? इस दीनता (असहाय-भाव) को छोड़कर संसार दुःख से मुक्त होने के लिए भगवान् शिव की आराधना में लग जाओ। (आराधना किस प्रकार करोगे–) वह मैं यहाँ कर देता हूँ।

आराधना इस प्रकार

हा किं न पश्यसि दृढैरपि पाशजालै-
र्मां हन्तुमिच्छति पशुमिव कालव्याधः।
कालान्तकारक! महेश्वर! क्वासि, क्वासि ?
भीतं न पालयसि किं ? जगतां निवासिन् ॥३॥

---

१. जन्म-मरण, शोक-मोह और क्षुत्-पिपासा–ये जीवभाव की छः ऊर्मियां (धर्म) हैं। शिव इन ऊर्मियों से रहित है।

अर्थ:-महाकाल का अन्त करने वाले भगवान् शिव! हाय, क्या नहीं देखते हो कि महाकाल अपने दृढ़ पाश-जाल लेकर मुझे ऐसे ही मार डालने की इच्छा करता है जैसे एक शिकारी वन्य पशु को (मारने के लिए पीछे दौड़ता है)? हे महेश्वर! तुम कहाँ हो, कहाँ हो! हे तीनों जगत् में वास करने वाले (परमेश्वर)! (इस) भय से पीड़ित मुझ (अपने भक्त) की रक्षा क्यों नहीं करते हो ?

आः किं न उद्धरसि नाथ निमज्जमानं
मोहार्णवेऽतिगहने भवभारक्षिण्णम् ?
मा पश्य मत्कुकृतिमप्यतिगर्हितां च
वीक्षस्व स्वां महदनुग्रहशक्तिमेव ।।४।।

अर्थ:-हे स्वामी! हाय, संसार-भार से परेशान (और) बहुत गहरे मोह समुद्र में डूबते हुए मुझ (ऐसे भक्त) का उद्धार क्यों नहीं करते हो ? बहुत निन्दा के योग्य भी मेरे कुकृत्यों की ओर मत देख। अपनी महान अनुग्रह शक्ति की ओर ही (तो) ध्यान दो।

कष्टं करालदशनो ह्यपि कालव्यालो
दष्टुं महत्तरजवेन प्रधावति माम्।
नष्टुं किमस्य तव शक्तिरपोहितैव
येनातुरं हि उरगाय ह्युपेक्षसे माम् ।।५।।

अर्थ:-हाय कष्ट है, विकराल दाँत निकालकर कालरूपी साँप मुझे डसने को तेज़ी से दौड़ रहा है। इसका नाश करने के लिए आपकी शक्ति मानो छिप गई (मन्द पड़ी) है। जान पड़ता है कि साँप (को सुरक्षित रखने) के लिए मेरी ओर ध्यान नहीं देते (क्योंकि साँप आपके अंगों से लिपटे रहने के कारण आपको प्यारे हैं न)।

दग्धुं कुकर्मपवनेन च दीप्यमानः
कालानलोऽयमभितो ह्यचिरात्प्रयाति।
भस्मीकरोत्यहह मां झटिति पिनाकिन्!
शान्तिं नयस्व सुकृपामृतवर्षणेन ॥६॥

अर्थः—मेरे कुकर्म रूप वायु से जाज्वल्यमान यह महाकाल रूप अग्नि (मेरे) चारों तरफ तेज़ी से फैल रही है। हाय, हाय! यह मुझे शीघ्र ही भस्म कर डालेगी। हे पिनाकधारी शिव! अपने सत्कृपारूपी वर्षन से इस (कालरूप अग्नि) को शान्त कर दो।

रुग्नः लुठाम्यवनि भग्नकटीव सर्पः
कंदर्पदर्पहर! मे हरसि न दुःखम्।
को वा परः त्वदपरः वरणार्हब्रूहि
यं त्वां विहाय कृपणः शरणं गमिष्ये ॥७॥

अर्थः—हे कामदेव के दर्प को हरण करने वाले शिव! मैं टूटी हुई कमर वाले साँप की तरह रोग-ग्रस्त होकर पृथ्वी पर लुढ़कते जा रहा हूँ आप मेरा दुःख दूर नहीं करते। आप ही बताइए कि आप से उत्कृष्ट और कौन है जो बेरोक (अनर्गल) अनुग्रह करने में समर्थ है जिसकी शरण में, आपको छोड़कर, मेरे जैसा कृपण[1] जा सकता है।

आर्तोऽस्म्यहं हि विलपामि त्वदङ्घ्रिलग्नः।
त्वं तु सुविस्मृतिप्रदौषधिपानमग्नः।

---

१. कृपण (कश्मीरी में क्रिपिञ) उसे कहते हैं जो उस अक्षर परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने के बिना ही शरीर त्याग करता है:—'यो वा एतदक्षरमविदित्वाऽस्माल्लोकात् प्रैति स कृपणः' ऋषि याज्ञवल्क्य बृहदारण्यकोपनिषद् में गार्गी के प्रति ऐसा कहते हैं।

एतत् चरित्रमुभयोरवलोकमाना:
त्वां शीघ्रतोषित! कथं जगति स्तुवन्ति ॥८॥

अर्थ:-मैं तो आर्त हूँ और आपके चरणों की शरण लेकर विलाप कर रहा हूँ, परन्तु आप भुला देने वाली औषधि को पीते मग्न (दिखाई देते) हैं (जो मेरे इस आर्तनाद की ओर कोई ध्यान नहीं देते हो) हे शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले शिव! (हम दोनों का) यह चरित्र देखते हुए (लोग) कैसे आपकी स्तुति करते ही हैं।

शक्नोसि त्वं यदि न संसृतिदु:खमेतत्
हर्तुं समर्थयसि नार्थिनमुत्तरञ्च।
नार्हामि चेत् तव कृपालवलेशमीश
शीघ्रं बहिष्कुरु तथापि प्रपंचकोशात् ॥९॥

अर्थ:-हे ईश्वर! यदि आप मेरा यह संसार में आवागमन का दु:ख दूर नहीं कर सकते और यदि (मुझ) प्रार्थना करने वाले (आर्त भक्त) को उत्तर देने में भी समर्थ नहीं हो, (इस प्रकार) यदि मैं आपकी कृपा का लेश-मात्र भी प्राप्त करने के योग्य नहीं हूँ, तो फिर जल्दी ही मुझे इस संसार रूप कोश (कोठरी) से बाहर कर दो (व्यंग्य में कहा है कि मुक्ति का भाजन बनाओ)।

याचे न वैश्रवणकोशसमाधिकारं
नो वाऽमरेन्द्रसमतां न दिवि विहारम्।
भोगेच्छयापि भगवन्! न च सार्वभौमं
यच्चिन्तया तव मन: ननु खेदमायात् ॥१०॥

अर्थ:-हे भगवान्! मैं कुबेर के समान धनपति बनने का अधिकार आपसे नहीं माँगता हूँ, न राजा इन्द्र के साथ समता और न

स्वर्ग-लोक में रहने की माँग करता हूँ। मैं भोगों की इच्छा से भी सबसे बढ़कर नहीं बनना चाहता हूँ, जिन (माँगों) की चिन्ता से आपके मन में खेद (कष्ट) हो!

दीनोऽस्मि कर्मगतिना सरणौ निक्षिप्तः
जन्मजरामरणव्याधिशतैश्चतप्तः।
त्वामर्थयामि गिरिजावर! एतदेव
मामुद्धराशु कृपया ननु कोऽत्र खेदः ॥११॥

अर्थः—मैं अपनी कर्म-गति से दीन-हीन होकर इस संसारचक्र में पड़ा हूँ जिसके फलस्वरूप मैं जन्म-जरा-मरण और सैकड़ों व्याधियों से संतप्त हूँ। हे गिरिजावर! (पार्वती पति) मैं (इस अवस्था में) आपसे केवल यही माँगता हूँ कि कृपा करके मेरा (इस दुःखमय संसार से) जल्दी उद्धार करो। इसमें (आपको) खेद ही क्या है।

त्वं चेन्न उद्धरसि मां हरसि न तापं
पापस्य स्वस्य फलमेव तु तद्विजाने।
किंच जनास्तवगुणानुस्मृणे वदेरन्
नैवार्तत्राणकुशलो जटिलो कपाली ॥१२॥

अर्थः—यदि आप मेरा उद्धार नहीं करते और (इस तरह) मेरे संताप को दूर नहीं करते तो मैं यह जानता ही हूँ कि यह मेरे अपने पाप का फल है! किन्तु आपके भक्तजन आपके गुणों का अनुस्मृन (चर्चा) करते समय कहेंगे ही कि यह जटाधारी शिव जो हाथ में कपाल लेकर स्वयं भिक्षा के लिए घूमता रहता है, आर्त भक्तों की (अनुग्रह द्वारा) रक्षा करने में कुशल नहीं हैं।

यच्च त्वया त्रिपुरधानवध्वंसकाले

यच्चान्तकान्तकरणे दहने स्मरस्य।
दिव्यं बलमतुलमीश! प्रदर्शितं तत्
दीनस्य त्राणकरणावसरे क्व यातम् ॥१३॥

अर्थः—हे ईश्वर! जो दिव्य (अलौकिक) और अतुल (जिसकी कोई बराबरी न हो ऐसा) बल आपके (क) त्रिपुरधानव का नाश करते समय दिखाया (ख) महाकाल का भी अन्त करने के समय दिखाया, और (ग) कामदेव को दग्ध करने के अवसर पर दिखाया, वह (अनुपम बल) मुझ शरण में आये हुए भक्त के समय कहाँ चला गया? (अर्थात् सर्वसमर्थ होकर मेरे समय क्यों असमर्थ जैसे अपने आपको बता रहे हो?)।

त्वं निर्बलोस्यप्यथवा बलवत्तरोऽसि
कर्त्तुं कृपां त्वमक्षमोस्यथवा क्षमोऽसि।
स्वामिन्! ममासि भवदङ्घ्रियुगं कथञ्चित्
प्राप्तोऽस्मि नाथ! शरणं न तु तं विमुञ्चे ॥१४॥

अर्थः—आप निर्बल हो अथवा आप बहुत बलवान हो, आप कृपा (अनुग्रह) करने में असमर्थ हो अथवा आप (किसी-किसी पर) कृपा करने में समर्थ हो (—इन बातों से मेरा कोई अभिप्राय नहीं है। परन्तु) हे स्वामी! आप मेरे हो। हे नाथ! मैंने तो आपके चरणों की जोड़ी की शरण (किसी पूर्व पुण्य-पुञ्ज के परिपाक से और सत्गुरु के कृपा कटाक्ष से) ली है। मैं तो अब उस (शरण अर्थात् 'पकड़') को नहीं छोड़ूँगा।

स्वामिन्! विनापि विनयेन यदि त्वदग्रे
तीक्ष्णैः पदैः प्रकटयामि च स्वाभिसंधिम्।

लज्जोज्झितत्वमपि तत् भगवन्! क्षमोऽसि
सोढुं भवान् पितुरिवार्भकदुर्वचांसि ॥१५॥

अर्थः—हे स्वामी! यदि आपके सामने बड़ी तेज़ वाणी में मैं अविनय से ही (आपके साथ) अपना मेल (सत्तासामान्य भाव से एकता) प्रकट करता हूँ और वह भी लज्जा (शिष्टाचरण) को त्याग कर, तो भगवन्! वह आप ही सहन करने में समर्थ हो जैसे (लोकव्यवहार में) पिता ही अपने बालक के (अविनय से) कहे दुर्वचनों को सहन कर सकता है।

आक्रन्दनस्तुतिरियं शिवसन्निधाने
भक्त्या तु दीनमनसा पठति पुमान् यः।
तस्य नगेन्द्रतनुजापतिराशुतोषः
दुर्वार दुःखशमनं दयया करोति ॥१६॥

अर्थः—इस स्तुति का फल यह है कि जो भी साधारण पुरुष इस आक्रन्दनस्तुति को बड़ी भक्ति और विनम्र भाव से भगवान् शिव के सन्निधान पूजा-स्तुति[१] के रूप में पढ़ता है उस पर पार्वती-पति आशुतोष भगवान् शिव अपनी (अहैतुकी) दया से (कठारे संसार भय से पैदा हुआ) दुःख शान्त करता है अर्थात् शिव उस भक्त को मुक्ति का भाजन बनाते हैं।

इति पण्डित शिवकौल कृता आक्रन्दनस्तुतिः।

---

१. पूजा-स्तुति में भगवान् का चिन्तन (ध्यान) करना आवश्यक है। पूजादि कर्म सफल होते हैं। महर्षि पतञ्जलि ने कहा है—'तज्जपस्तदर्थभावना'—भगवान् के नाम (ॐ) का जप उस (मन्त्र) के अर्थ को जानते हुए करने से सिद्धि मिलती है।

वन्दे चरणारविन्दम्

कलियुग में श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न पुरुष ऐसे यज्ञों द्वारा भगवान् श्री नारायण की आराधना करते हैं, जिनमें नाम, गुण, लीला आदि के कीर्तन की प्रधानता रहती है वे लोग भगवान् की स्तुति इस प्रकार गाते हैं–

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥१॥

हे नारायण! आपके चरणारविन्द सदा-सर्वदा ध्यान करने योग्य हैं। वे माया-मोह के कारण होने वाले सांसारिक पराजयों का अन्त कर भक्तों को समस्त अभीष्ट वस्तुओं को देने वाले कामधेनु-स्वरूप हैं। वे तीर्थों को भी तीर्थ बनाने वाले स्वयं परम् तीर्थ स्वरूप हैं। शिव, ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता उन्हें नमस्कार करते हैं। चाहे जो कोई उनकी शरण में आ जाय, उसे स्वीकार कर लेते हैं। सेवकों की समस्त आर्ति और विपत्ति के नाशक तथा संसार-सागर से पार जाने के लिए जहाज हैं। हे महापुरुष! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दों की वन्दना करता हूँ।

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सित राज्य लक्ष्मी
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावत्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥२॥

प्रभो! आपके चरण कमलों की महिमा से ही रामावतार में अपने पिता दशरथ जी के वचनों से देवताओं से भी इच्छा की गई और त्याग न की जाने वाली राज्यलक्ष्मी को छोड़कर आप वन-वन घूमते फिरे। सचमुच आप धर्मनिष्ठ हैं। अपनी प्रेयसी सीता जी के चाहने पर जान-बूझकर आपके चरण कमल माया मृग के पीछे दौड़ते रहे। हे महापुरुष! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दों की वन्दना करता हूँ।

श्रीमत्सरोरुहयवांकुश चक्रचाप
मत्स्याङ्कितं नवविलोहितपल्लवाभम्।
लक्ष्म्यालयं परम मङ्गलमात्मरूपं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥३॥

हे महापुरुष! मैं आपके उन चरणारविन्दों की वन्दना करता हूँ जिनके तलवों पर कमल, गेहूँ का खोशा, महावत का अंकुश, चक्र, धनुष और मछली के शुभ चिह्न अंकित हैं, और जो नये निकले चिकनाई वाले लाल पत्तों के समान चमकते हैं। जिन्होंने लक्ष्मी के हृदयस्थल को अपना निवास बनाया है और परम मङ्गल को देने वाले तथा आत्मस्वरूप वाले हैं।

वृन्दावनान्तरमगादनु गोकुलानां
सञ्चार्य सर्वपशुभिः स्वविवृद्धकामी।
सञ्चिन्तयदगगुरोर्मृगपक्षिणां यत्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥४॥

प्रभो! कृष्ण अवतार में जो चरण कमल इन्द्र के क्रोध से सताए हुए भोले-भाले गोकुल के लोगों को वृन्दावन में गोवर्धन पर्वत के नीचे ले गए और जिन चरणों के बल पर ही आपने अपनी छोटी

अंगुली पर सात दिन तक उस पर्वत को वहाँ के पशुओं और पक्षियों के रक्षार्थ धारण किया, हे महापुरुष! मैं उन्हीं आपके चरणकमलों की वन्दना करता हूँ।

यद्गोपिकाविरहजाग्नि परीतदेह-
स्तप्तस्तनेषु विजहुः परिरभ्य, तापम्।
रासे तदीयकुचकुंकुमपङ्कलिप्तं
वन्दे महापुरुष चे चरणारविन्दम् ॥५॥

हे महापुरुष! मैं आपके उन चरणकमलों की वन्दना करता हूँ जिनके केवल छू लेने से रास क्रीड़ा में प्रेम से पीड़ित गोपियों की प्रेम-पीड़ा शान्त हो गई और जो चरण-कमल उन्हीं गोपियों के कुचों पर लगे कुंकुम-चन्दन के लेप से रंग गये।

कालीयमस्तकविघट्टनदक्षमस्य
मोक्षेप्सुभिर्विरहदीनमुखाभिरारात्।
तत्पत्निभिः स्तुतमशेषनिकामरूपं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥६॥

वीर शिरोमणि कृष्ण के रूप में हे महापुरुष! हम आपके उन चरण-कमलों की वन्दना करते हैं जो कालीनाग के सिर को दबाने में दक्ष रहे और जिनकी ओर उसकी पत्नियाँ दूर से और समीप से प्रार्थना करती रहीं कि आप उस (नाग) को पीड़ा-मुक्त कर दें और उन्हें उनके प्राणप्रिय पतिदेव से जुदाई के कष्ट का निवारण करें।

ज्ञानालयं श्रुतिविमृग्यमनादिमर्च्यं
ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः।

संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥७॥

प्रभो! जिन चरणों को श्रुति-ज्ञान प्राप्त करके ही ढूँढ़ा जाता है, जो अनाद्य हैं, जिन्हें ब्रह्मा आदि देवता हृदय में दृढ़ धारणा से ध्यान में लाते हैं और जो संसार-रूप कुएँ में डूबे हुए जनों के आश्रय-मात्र हैं। हे महापुरुष! मैं उन्हीं आपके चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ।

येनाङ्कपालवपुषः स्तनपानबुद्धे-
स्त्वदंघ्रिणाहृतमनो, विपरीतचक्रम्।
विध्वस्तभाण्डमपतद्भुवि गोपमूर्ते-
र्वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥८॥

हे बालकृष्ण! आपके प्रथम जन्म-दिवस पर माता यशोदा ने आप को नन्दबाबा के छकड़े के नीचे साये में इसलिए लिटाया था कि आप दिशा-बदलना सीख जायें। छकड़ा धूप में खड़ा था। शकटासुर ने मौका पाकर किसी पूर्व शाप के कारण छकड़े में बैठने का अवसर पाया ताकि आप के शिशु-शरीर को मसल डाले। परन्तु उसके दुष्ट-विचार को जान आप ने माता से दूध पीने के बहाने अपने छोटे पैरों को हिलाया। इससे गाड़ी झट उलट गई और दूध के सारे बर्तन सहित शकटासुर का मर्दन हुआ। इससे लोमश ऋषि की प्रतिज्ञा के अनुसार उसकी ऋण-मुक्ति हुई। हे महापुरुष! मैं आपके उन्हीं चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ।

वन्दे चरणारविन्दम् के
श्लोकों का फल

इत्यष्टकं पठति यः परमस्य पुंसो
नारायणस्य निरयार्णवतारणस्य।
सर्वाप्तिमाशु हृदये कुरुते मनुष्यः
संप्राप्य देहविलयं लभते च मोक्षम् ॥

भावार्थः—भगवान् नारायण की इस स्तुति के आठ श्लोकों का पाठ जो मोक्षाभिलाषी पुरुष सच्चे दिल से और भक्ति भाव से नित्य-प्रति करता है उसे इस दुःख सागर से पार उतरने का उपाय मिल जाता है। मनुष्य की सम्पूर्ण इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। वह जीवन्मुक्ति का सुख भोगते हुए अन्त में स्वरूपस्थिति करके निर्वाण पद प्राप्त करता है।

इति वन्दे चरणारविन्दम्॥

महर्षि उपमन्युकृत

शिवस्तोत्रम्

जय शंकर! पार्वतीपते!
मृड! शम्भो शशिखण्डमण्डन!
मदनान्तक! भक्तवत्सल!
प्रिय कैलास! दयासुधाम्बुधे ॥१॥

हे शंकर! हे पार्वतीपते! हे सुख देनेवाले शम्भु! हे द्वितीया के चन्द्रमा को आभूषण बनाकर शिर पर धारण करने वाले प्रभु! हे कामदेव को नाश करने वाले भक्तवत्सल कैलास प्रिय! हे कृपारूपी अमृत के महासागर महादेव! आपकी सर्वदा जय-जयकार हो।

सदुपायकथा स्वपण्डितो
हृदये दुःखशरेण खण्डितः।
शशिखण्ड शिखण्डमण्डनं
शरणं यामि शरेण्यमीश्वरम् ॥२॥

हे प्रभो! मैं हृदय में आध्यात्मिक आदि त्रिविध दुःखरूपी बाण से पीड़ित हूँ, इस दुःख का निवारण करने वाली अच्छी कथा आदि उपाय को मैं जानता नहीं। अतः हे अर्धचन्द्र एवं मयूरपुच्छ को आभूषण बनाने वाले और शरणागत की रक्षा करने वाले महादेव! मैं समस्त संसार से विमुख होकर एकमात्र आपके ही शरण में आया हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिए।

महतः परितः प्रसर्पत-
स्तमसो दर्शन भेदिनो भिदे।

दिननाथ इव स्वतेजसा
हृदयव्योम्नि मनागुदेहि नः ॥३॥

प्रकाश के विरोधी सर्वत्र फैले हुए महानिबिडतम् अन्धकार को नाश करने के लिए जैसे सूर्य भगवान् उदित होते हैं, तद्वत् हे शंकर! हमारे हृदयाकाश में फैले हुए ज्ञान के विरोधी महा अज्ञानरूपी अन्धकार को नाश करने के लिए, इसी हृदयाकाश में स्वयं-प्रकाश ज्ञान-स्वरूप सूर्य के भी सूर्य! आप कृपया प्रकट हो जाइए।

न वयं तव चर्मचक्षुषा
पदवीमप्युपवीक्षितुं क्षमाः।
कृपयाऽभयदेन चक्षुषा
सकलेनेश विलोकयाशु नः ॥४॥

हे प्रभो! हम लोग इस चर्मचक्षु से आपके विमल शान्त आनन्दरूप पद को देखने के लिए समर्थ नहीं हो सकते। अतः हे कृपासागर महादेव! आप ही कृपया अपने अभयप्रद स्वयं-प्रकाश ज्ञानरूप नेत्र से हमको शीघ्र ही देखिए।

त्वदनुस्मृतिरेव पावनी
स्तुतियुक्ता किमु वक्तुमीश! सा।
मधुरं हि पयः स्वभावतो
ननु कीदृक् सित शर्करान्वितम् ॥५॥

हे प्रभो! विश्वनाथ! दूध स्वभाव से मधुर ही होता है, अगर सुन्दर शर्करा उसमें मिलाई जाय तो कहना ही क्या? अर्थात् उस दूध की मधुरता विशेष प्रशंसनीय हो जाती है। इसी प्रकार परम कल्याणमय आपका परम पवित्र स्मरण संसार को परम पावन करने वाला है ही,

अगर वह आपका स्मरण सुन्दर स्तुति से युक्त हो जाय तो कहना ही क्या है? अर्थात् स्तुति के साथ-साथ आपका स्मरण भी यदि हो जाय तो आपको प्रसन्न करने में भक्त को विलम्ब नहीं होगा।

सविषोऽप्यमृतायते भवान्!
शवमुण्डाभरणोऽपि पावनः।
भव एव भवान्तकः सतां
समदृष्टिर्विषमेक्षणोऽपि सन् ॥६॥

हे नाथ! हालाहल विष को धारण करने वाले होने पर भी आप अपने प्रेमी भक्तों के लिए अमृत-स्वरूप बन जाते हैं। मुर्दों की खोपड़ियों की माला को धारण करने पर भी आप सर्वथा परम पवित्र ही रहते हैं। संसार को उत्पन्न करने वाले भव होने पर भी आप संसार के नाशकर्ता भवान्तक भी हैं एवं तीन नेत्र वाले विषमेक्षण होने पर भी आप समदृष्टि कहे जाते हैं। अहा! आपकी महिमा अपरम्पार है, आपके समान आप ही हैं। तुच्छ मनुष्य आपकी प्रभुता कैसे जान सकता है।

अपि शूलधरो निरामयो
दृढवैराग्यरतोऽपि रागवान्।
अपि भैक्ष्यचरो महेश्वर-
श्चरितं चित्रमिदं हि ते प्रभो! ॥७॥

हे प्रभो! शूलरूप-त्रिशूल को धारण करने पर भी आप संसाररूपी शूल (रोग) से रहित पूर्ण स्वस्थ हैं। अपने अर्धाङ्ग में सर्वलोक-सुन्दरी भगवती पार्वती को धारण करने के कारण रागी होने पर भी आपका दृढ प्रेम वैराग्य में ही है। एवं भिक्षावृत्ति से निर्वाह

करने पर भी आप महान् ईश्वर अर्थात् समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी हैं। हे प्रभो! विश्वनाथ! आपका चरित्र विचित्र ही है अर्थात् आपके इस विलक्षण चरित्र से राक्षसों को मोह होता है; और आपके भक्तों की आपमें भक्ति दृढ होती है।

वितरत्यभिवांछितं दृशा
परिदृष्टः किल कल्पपादपः।
हृदये स्मृत एव धीमते
नमतेऽभीष्टफलप्रदो भवान् ॥८॥

हे कृपानिधान! कल्पवृक्ष को नेत्र से देखने पर ही उससे अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है। कल्पवृक्ष के स्मरण करने से अभीष्ट वस्तु नहीं मिलती। परन्तु विनयशाली बुद्धिमान मनुष्य आपका अपने हृदय में स्मरण व नमस्कार करने मात्र से ही आप से अभीष्ट वस्तु को प्राप्त कर लेता है अर्थात् आप अभीष्ट फल देने में कल्पवृक्ष से भी अति श्रेष्ठ हैं।

सहसैव भुजङ्गपाशवान्
विनिगृह्णाति न यावदन्तकः।
अभयं कुरु तावदाशु मे
गतजीवस्य पुनः किमौषधैः ॥९॥

हे प्रभो! नागपाश को धारण करने वाले यमराज जब तक शीघ्रता से मुझे न पकड़ ले तब तक ही, हे नाथ! आप मुझे अति शीघ्रता उससे अभय कर दीजिए। जब प्राणी का जीवन नष्ट हो जाय तो फिर औषधियों से क्या लाभ! कोई लाभ नहीं होता।

सविषैरिव भीमपन्नगै-

विषयैरेभिरलं परिक्षतम्।
अमृतैरिव संभ्रमेण माम-
भिषिंचाशु दयावलोकनैः ॥१०॥

हे प्रभो! भीषण विषवाले भयंकर सर्पों के समान शब्दादि विषयों से मैं सब तरफ से घिरा हुआ हूँ अर्थात् विषयों का विष मेरे रोम-रोम में व्याप्त हो गया है। अतः हे कृपा-सागर! आप अपनी कृपादृष्टि रूपी विमल अमृत का मुझ पर अतिशीघ्र सिंचन करो। यही आपसे नम्र निवेदन है।

मुनयो बहवोऽपि धन्यतां
गमिताः स्वाभिमतार्थदर्शिनः।
करुणाकर! येन तेन माम-
वसन्नं ननु पश्य चक्षुषा ॥११॥

हे नाथ! आपकी अमृतमयी कृपादृष्टि से अनेक मुनिगण अपनी अभिलाषा पूर्ण कर कृतार्थ हो गए हैं। हे करुणा के महानिधि! उसी कृपादृष्टि रूप ज्ञान-नेत्र से, संसार के त्रिविध तापों से नितान्त दुःखी मुझ को आप देखने की कृपा करो।

प्रणमाम्यथ यामि चापरं
शरणं कं कृपणाभयप्रदम्।
विरहीव विभो! प्रियामयं
परिपश्यामि भवन्मयं जगत् ॥१२॥

हे विभो! आप दीन-दुःखियों को अभय देने वाले हैं। अतः मैं दीन-दुःखी आपको छोड़कर किसकी शरण में जाऊँ। और किसको प्रणाम करूँ अर्थात् आपके अतिरिक्त और कोई भी इस मेरे दुःख को

हटाने में समर्थ नहीं है। अतः मैं आपके ही शरण में आया हूँ। एवं एकमात्र आपको ही नमस्कार करता हूँ। हे व्यापक परब्रह्म! जैसे कामुक-विरही मनुष्य समस्त जगत् को अपनी प्रिया स्त्री रूप देखता है उसी प्रकार हे नाथ! मैं भी आपका अनन्य प्रेमी इस समस्त संसार को आपका ही स्वरूप देखता हूँ।

बहवो भवताऽनुकम्पिताः
किमितीशान! नमामनुकम्पसे।
दधता किमु मन्दराचलं
परमाणुः कमठेन दुर्धरः ॥१३॥

हे महेश्वर! आपने अनेक जीवों के ऊपर कृपा की है तो क्या मेरे ऊपर आप कृपा नहीं करेंगे? मुझे परिपूर्ण विश्वास है कि आपकी कृपा मुझ दीन पर अवश्य ही होगी। क्योंकि अतिगुरु मंदराचल पर्वत को धारण करने वाले कूर्मरूप आपको अति लघु परमाणु धारण करने में कौन सी कठिनाई होवेगी? मुझ पर कृपा-दृष्टि करना आपके लिए कोई बोझ नहीं बनेगा।

अशुचिं यदिमामनुमन्यसे
किमिदं मूर्ध्नि कपालदाम ते।
उत शाठ्यमसाधुसङ्गिनं
विषलक्ष्मासि न किं द्विजिह्वधृक् ॥१४॥

हे भोलेशंकर! अगर आप मुझे अपवित्र मानते हों तो क्या आपके मस्तक पर अपवित्र खोपड़ियों की माला नहीं है? अर्थात् जैसे आपने अपवित्र खोपड़ियों की माला अपनाई है वैसे ही मुझ अपवित्र को भी अपनाइए। यदि आप मुझे शठ कुसंगि अधम मानते हों तो

कहिए भगवन्! क्या आपने अधम एवं शठ सर्पों को धारण नहीं किया है। अर्थात् जैसे आपने अधम एवं शठ प्राणियों को आश्रय दिया है उसी प्रकार मुझ अधम को भी आश्रय दीजिए। 'कुछ लोगों को आश्रय देना और मुझ दीन को नहीं देना' ऐसा पक्षपात आपको शोभा नहीं देता, आप समदृष्टि हैं।

क्व दृशं विदधामि किंकरो-
म्यनुतिष्ठामि कथं भयाकुलः।
क्व नु तिष्ठसि रक्ष रक्ष मा-
मयि शम्भो! शरणागतोऽस्मि ते ॥१५॥

हे शम्भो! जन्म-मरणादि भय से मैं नितान्त व्याकुल हूँ। हाय! अब मैं अपनी दृष्टि को कहाँ धारण करूँ अर्थात् किसके सन्मुख होऊँ, क्या करूँ! अरे! आप कहाँ रहते हैं। हे महादेव! मेरी शीघ्र रक्षा कीजिए। मैं एकमात्र आपकी ही शरण में आया हूँ।

विलुठाम्यवनौ किमाकुलः
किमुरोहन्मि शिरच्छिनद्मि वा।
किमु रोदिमि रारटीमि किं
कृपणं मां न यदीक्षसे प्रभो! ॥१६॥

हे प्रभो! अगर आप ही मुझ दीन-दुःखी के प्रति कृपादृष्टि नहीं करते हैं तो क्या मैं व्याकुल होकर इस पृथ्वी में लोटूँ? या खड़े होकर इस कठोर छाती को पीटूँ? या इस मस्तक को काट डालूँ या रोने लगूँ; या बड़े ज़ोरों से रुदन आरम्भ कर दूँ। (चाहे मुझे जो कुछ करना पड़े, मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि आपको प्रसन्न किए बिना मैं चुप रहने वाला नहीं)।

शिव! सर्वग! शर्व! शर्मद!
प्रणतो देव! दयां कुरुष्व मे।
नम ईश्वर! नाथ! दिक्पते!
पुनरेवेश! नमो नमोऽस्तु ते ॥१७॥

हे कल्याण-स्वरूप शिव! हे सर्वव्यापक ईश्वर! हे संहारक! हे अखण्ड शान्ति को देने वाले देव! मैं आपको श्रद्धा भक्ति समेत अनेकों प्रणाम करता हूँ। मुझ पर दया कीजिए। हे ईश्वर! हे विश्वनाथ! हे समस्त दिशाओं के पति! हे अन्तर्यामिन्! आपको बारम्बार नमस्कार हो।

शरणं तरुणेन्दुशेखरः
शरणं मे गिरिराजकन्यका!
शरणं पुनरेव तावुभौ
शरणं नान्यदुपैमि दैवतम् ॥१८॥

तरुण चन्द्रमा को अपने मस्तक में धारण करने वाले भगवान् शंकर ही मुझ दीन को शरण देने वाले हैं। गिरिराज कन्या भगवती पार्वती मेरी रक्षक हैं। आप दोनों ही मुझ दुःखी के शरण (आश्रय) हैं। अतः मैं आपको छोड़कर और किसी अन्य देवता की शरण में नहीं जाता।

उपमन्युकृतं स्तवोत्तमं
पठतः शम्भु समीपवर्तिनः।
अभिवाञ्छित भाग्य सम्पदः
परमायु प्रददाति शंकरः ॥१९॥

इस उपमन्यु महर्षि प्रणीत सर्वोत्तम स्तोत्र का जो कोई श्री

शंकर की प्रतिमा के समीप बैठकर पाठ करता है उसको भगवान् शंकर अभीष्ट भाग्य, सम्पत्ति एवं दीर्घायु देते हैं।

शंकरस्य चरितं कथामृतं
चन्द्रशेखर गुणानुकीर्तनम्।
नीलकण्ठ! तव पादसेवनं
सम्भवन्तु मम जन्म जन्मनि ॥२०॥

हे नीलकण्ठ भगवन्! आपके विमल चरित्र रूपी कथामृत, आपके उदार शुद्ध गुणों का कीर्तन एवं आपके चरण-कमल की अर्चना-भक्ति मुझे अपने प्रत्येक जन्म में प्राप्त हो।

उपमन्युकृतं स्तवोत्तमं
प्रजपेद्यस्तु शिवस्य संनिधौ।
शिवलोकमवाप्य सोऽचिरात्
सह तेनैव शिवेन मोदते ॥२१॥

महर्षि उपमन्यु प्रणीत इस उत्तम स्तोत्र को जो भगवान् शिव के समीप पढ़ता है वह शीघ्र ही शिवलोक कैलाश को प्राप्त होता है और भगवान् शिव के साथ सदा के लिए परमानन्द महासागर में निमग्न हो जाता है।

–इति उपमन्युकृतशिवस्तोत्रम्–

कृष्णयजुर्वेदीय

कैवल्योपनिषद्

इसी उपनिषद् के अन्तिम भाग में इसे शतरुद्रीय का नाम दिया है। परन्तु यह तैत्तिरीय संहिता का शतरुद्रीय जो सगुण शिव की स्तुति करता है, नहीं है। इसे इतर उपनिषदों के टीकाकार श्री नारायण ने **'ब्रह्मशतरुद्रीय'** का नाम दिया है। यह सरल, स्पष्ट और परमार्थ-सार-भूत छोटा उपनिषद् है। यह स्वतन्त्र ब्रह्म के निर्गुण रूप का स्तुति-परक साधना ग्रन्थ है और उच्चकोटि का दर्शन भी। सरल तथा रोचक शब्दों में यह मानव जीवन का तथ्य और परब्रह्म की प्राप्ति का उपाय बताता है। ज्ञानी-भक्त इसका नितय-पाठ करते हुए अर्थ-विश्लेषण की ओर पूर्ण ध्यान देते हैं। कहानी के रूप में आरम्भ किये इस श्रुति ग्रन्थ का विषय बुद्धिग्राह्य भी है और साधना-प्रेरक भी।

अथाश्वलायनो भगवन्तं परमेष्ठिनमुपसमेत्योवाच-

ऋषि अश्वलायन ऋग्वेद का एक ऋषि था। वह साधनचतुष्टय सम्पन्न होकर एक बार भगवान् ब्रह्मा जी की शरण में गया और विनम्र भाव से प्रार्थना की-

अधीहि भगवन् ब्रह्मविद्यां वरिष्ठां
सदा सद्भिः सेव्यमानां निगूढाम्।
ययाऽचिरात् सर्वपापं व्यपोह्य
परात्परं पुरुषं याति विद्वान् ॥१॥

हे भगवन्! ब्रह्मविद्या जो सब प्रकार की विद्याओं में अति उत्तम है, अन्तःकरण से समझने के लिए अति गूढ है और जिसका सेवन सन्मति से युक्त यतिजन सदा और निश्चयपूर्वक करते हैं; जिसको प्राप्त करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त होता है और विद्वान् पुरुष परात्पर स्वस्वरूप परब्रह्म का साक्षात्कार करता है, कृपया उस महाविद्या का मुझे उपदेश कीजिए।

तस्मै स होवाच पितामहश्च
श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवैहि।
न कर्मणा न प्रजया धनेन
त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ॥२॥

उस (अश्वलायन ऋषि) से पितामह ब्रह्मा ने कहा–(क्योंकि ब्रह्मज्ञान शब्दों द्वारा दिया नहीं जा सकता, अतः) तू उसे श्रद्धा, भक्ति और ध्यान रूप योग के द्वारा ही जान। सकाम करने से (लोकैषणा), सन्तानोत्पत्ति द्वारा (दारैषणा) और धनप्राप्ति (वित्तैषणा) से उस परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता है। हाँ, कुछ साधक इन तीन एषणाओं के त्यागरूप संन्यास के द्वारा ही उस अमरभाव को प्राप्त हुए हैं।

परेण नाकं निहितं गुहायां
विभ्राजते यद्यतयो विशन्ति।
वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः
संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः॥
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे ॥३॥

जो स्वर्ग से भी परे, बुद्धिरूप गुहा में स्थित और प्रकाशमान है तथा जिसमें वेदान्त और विज्ञान द्वारा निश्चितमति यतिजन ही संन्यास और योग की सहायता से शुद्धसत्त्व होकर प्रवेश कर सकते हैं (वही शुद्ध ब्रह्म है)।

ऐसे योगी (जो विघ्न-बाधा के कारण इस वर्तमान जन्म में ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर पाते) देहपात के अनन्तर ब्रह्मलोक में चले जाते हैं और प्रलयकाल तक वहीं रहते हैं। (हाँ, संसार-वासना के शेषमात्र रहने के कारण वे कुछ उच्चस्तरीय और अमरयुक्त काम करते हैं तथापि सनातन ब्रह्म पद में प्रवेश नहीं कर पाते) प्रलयकाल के अवसर पर ही ब्रह्मा जी उनको उपदेश देते हैं और तब मुक्त होते हैं।

ब्रह्मा जी आगे ऋषि अश्वलायन को परमात्म-पद प्राप्ति के साधनरूप भजन-ध्यान के बारे में कहते हैं–

विविक्तदेशे च सुखासनस्थः
शुचिः समग्रीवशिरः शरीरः ॥४॥

अत्याश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि
निरुध्य भक्त्या स्वगुरुं प्रणम्य।
हृत्पुण्डरीकं विरजं विशुद्धं
विचिन्त्य मध्ये विशदं विशोकम् ॥५॥

एकान्त देश में (या घर आदि के किसी कोने में) सुखपूर्वक आसन में बैठकर शरीर तथा मन से पवित्र हो, शरीर के दढ़, शिर और गर्दन को सीधा रखें और ऐसे ही वासना (संकल्प-विकल्पों को) छोड़कर, अपने सब इन्द्रियों को ईश्वर की ओर लगाकर और

अपने गुरु महाराज का ध्यान हृदय में बिठाकर उसे भक्ति-भाव पूर्ण प्रणाम करें। तत्पश्चात् अपने हृदयकमल में मायामल (राग-द्वेष) से रहित होकर शुद्ध, निर्मल और शोकरहित उस परब्रह्म का ध्यान करें।

अब पहले निर्गुण-ध्यान कहते हैं-

अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं
शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम्।
तथाऽऽदिमध्यान्तविहीनमेकं
विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् ॥६॥

उस परमेश्वर का चिन्तन नहीं हो सकता है जब उसको ढूढ़ने वाला भक्त उसी के चिदानन्दरूप में लीन हो जाता है। तभी तो श्रीमद्भागवत् में यह वचन है-**'पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति पश्यन्तं परमेश्वरम्'**-अर्थात् वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, नारदादि ऋषि उस परमेश्वर के ध्यान में मग्न होकर भी साक्षी परब्रह्म को अनुभव में नहीं ला सकते। उसकी आराधना, ध्यान-समाधि में अथवा व्युत्थान दशा में भी वे करते ही रहते हैं। वास्तव में बात है कि **'विज्ञातारमरे केन विजानीयात्'**- जो सब का साक्षी त्रिभुवन को जानने वाला और परात्पर है उसे कौन दूसरा जान सकता है। वह तो वही बनता है।

यथा जलं जले क्षिप्तं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम्।
अविशेषो भवेत्तद्वत् जीवात्म परमात्मनोः॥

इस अवस्था में घुसे गिल्ले माफ हो जाते हैं। रूठे भी इसी पद पर मनाये गए। कश्मीर के भक्त शिरोमणि आचार्य उत्पलदेव ने यह जीवन्मुक्ति दशा पाकर कहा-**'पूजयन्स्यां तृणानपि'**।

तब वह अपनी ही माया से रची हुई लीला के कारण प्रकट

नहीं दीख पड़ता। फिर भी जगत् में चर और अचर पदार्थों के विस्तार से अनन्तरूपों वाला है; वह कल्याणरूप, शान्त, अमृतमय तथा सारे ब्रह्माण्ड का आधार है (यह सर्व जगत् उसी से पैदा हुआ है)। फिर भी वह एक ही, आदि-मध्य-अन्त रहित है, व्यापक है; चित्रूप, आनन्दरूप और आश्चर्यमय है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है–

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनं
आश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥

श्रुति कहती है–

'विजिज्ञासस्व, एतद्वैतद्'।

अब सगुण ध्यान कहते हैं–

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं
समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥७॥

वह परमेश्वर शक्तिसम्पन्न, पार्वती का पति, त्रिनेत्रधारी, नीलकण्ठ और शान्तस्वरूप है। उसका ध्यान करने से मननशील भक्त (मुनि) उसे पाता है जो समस्त जीवों का आधार, सबका साक्षी (विश्व के सब व्यवहारों को देखने वाला) और अविद्या से परे है।

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स
चन्द्रमाः ॥८॥

वही ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र है; वही अक्षर है; वही स्वयं प्रकाश तथा राजाओं का महाराजा है। वही (व्यापकरूप) विष्णु और (जीवरूप) प्राण है। वही काल (कालीरूप), अग्नि (जड़शक्तिरूप) और चन्द्रमा (शान्त आह्लादरूप) है।

स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम्।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥९॥

वह भूतकाल और भविष्यत् काल है। वही सनातन है। उसी का ज्ञान होने से मनुष्य मृत्यु को पार कर सकता है। मुक्ति पाने का और कोई रास्ता नहीं है।

अब व्यवहार में उस परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त करने के बारे में कहते हैं–

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
सम्पश्यन् ब्रह्म परमं याति नान्येन हेतुना ॥१०॥

सब जीव-शरीरों में एक ही आत्मा है और एक ही उसी आत्मा के निर्भर सब जीव-शरीर हिलते-फिरते हैं। जो साधक इस प्रकार परब्रह्म परमात्मा का अनुभव करने लगता है वह उसे अवश्य पाता है। इस बारे में दूसरा कोई उपाप नहीं है।

अतः परमेश्वर के पवित्र नाम ॐ (ओंकार या प्रणव) मन्त्र के अर्थपूर्ण जप का अभ्यास करने के बारे में भगवान् ब्रह्मा ऋषि अश्वलायन को उपदेश देते हैं–

आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ज्ञाननिर्मथनाभ्यासात् पाशं दहति पण्डितः ॥११॥

आत्मा को निचला अरणिकाष्ट (रगड़ से आग बनाने वाली लकड़ी) और ॐ को ऊपर का अरणिकाष्ट बनाकर ज्ञानरूप रगड़ करने से पारमार्थिक प्रकाशरूप अग्नि प्राप्त होती है। उस से बुद्धिमान सब पापों के पाश को जला देती है।

परमात्मा अपनी ही माया में मोहित होकर तीन अवस्थाओं वाले जीव का रूप धारण करता है। यह कैसे? इस पर कहते हैं–

स एव मायापरिमोहितात्मा
शरीरमास्थाय करोति सर्वम्।
स्त्रियन्नपानादिविचित्रभोगैः
स एव जाग्रत्परितृप्तिमेति ॥१२॥

वही आत्मा अपनी माया से मोहित होकर शरीर में प्रवेश कर सब जीवकार्य करता है। अपने अनन्त आनन्दस्वरूप को भूलकर क्षणक्षयी शरीर को ही अपना घर भूल से समझ बैठता है। अतः गृहस्थ सेवन, खाना-पीना आदि भोगों को भोगने से ही अपनी तृप्ति (सुख-जन्य अथवा दुःख-जन्य) पाता है। यह जीव की जाग्रत् अवस्था के अनुभव हैं।

स्वप्ने स जीवः सुखदुःखभोक्ता
स्वमायया कल्पितजीवलोके।
सुषुप्तिकाले सकले विलीने
तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति ॥१३॥

स्वप्न में वही आत्मा (जीवरूप में) अपनी माया अथवा अविद्या में रहने के कारण सांसारिक सुख और दुःख अनुभव करता है।

सुषुप्ति काल में जब वही जीव कारण अवस्था में लीन हो जाता है तब उसे तमोगुण ढांप लेता है। इस अवस्था में समस्त जागतिक पदार्थ कारण शरीर में लय हो जाते हैं और जीव तमोगुण से अभिभूत हो अज्ञान और आनन्द में ही ठहरता है। अज्ञान में यह आनन्द अवस्था परासंवित् रूप समाधि के विपरीत ही है। यह आनन्द जीव को अपने यथार्थ स्वरूप के आनन्द से वञ्चित रखता है। सुषुप्ति में आनन्द के अनुभव का प्रमाण यह है कि जागकर जीव स्वयं कहता है कि **'सुखमहमस्वापसं'**–'मैं सुख से सोया था'।

पुनश्च जन्मान्तरकर्मयोगात्
स एव जीवः स्वपिति प्रबुद्धः।
पुरत्रये क्रीडति यश्च जीव-
स्ततस्तु जातं सकलं विचित्रम्॥
आधारमानन्दमखण्डबोधं
यस्मिन्लयं याति पुरत्रयं च ॥१४॥

फिर वही जीव पूर्वजन्मों के कर्मफल के योग से स्वप्नावस्था या जाग्रदावस्था में आता है। इस प्रकार जो यह जीवरूप आत्मा तीन नगरों (जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति) में क्रीडा करता है, उसी से यह नानारूपता में पड़ा संसार उदित होता है। वास्तव में तो वही पूर्ण आत्मरूप है और इस सारे जगत् का आधार, आनन्दरूप और अखण्ड ज्ञानरूप है। उसी में यह तीनों जगत् (अवस्थाएँ) लयीभूत हैं। इस चौथी अवस्था को तुर्य कहते हैं। परमात्मा हर समय जागता ही रहता है। उसको स्वप्न या सुषुप्ति नहीं होते। श्लोक १४ की अन्तिम दो पंक्तियों में गुरु पितामह ने शिष्य अश्वलायन को समझाया कि वही कूटस्थ जीव जो जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति के तीन नगरों में क्रीड़ा

करता है, परमेश्वर के रूप में सबका आधार है। इसी विषय को आगे विस्तार से बताया जाता है–

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥१५॥

उसी परमेश्वर से प्राण, मन, सब (ज्ञान और कर्म) सब इन्द्रियां, आकाश, वायु, अग्नि, जल और इस चराचर जगत् को धारण करने वाली पृथ्वी भी पैदा होते हैं।

अतः देह, इन्द्रिय, सर्व-सृष्ट पदार्थ यहाँ तक कि सारे पंचभूतात्मक विश्व को अपने-अपने भूत में विभाजन करके फिर लय-चिन्तनाभ्यास के द्वारा सद्गुरुवर्णित क्रम से वापस एक को दूसरे में, दूसरे को तीसरे में; इस तरह पृथ्वी को अपने से दस गुणा जल में, जल को अपने से दस गुणा अग्नि में, इसी तरह से फिर आकाश को भी प्रकृति में लय करने का अभ्यास करके शेष बचे साक्षीभाव का अनुभव करना चाहिए। तत्पश्चात् साक्षीभाव का भी, सच्चिदानन्द परब्रह्म में लयीभाव प्राप्त कर स्वरूपस्थिति में परम विश्रान्ति मिलती है। इस अभ्यास में गुरुकृपा, शास्त्रकृपा तथा आत्मकृपा प्राप्त होने का विशेष महत्व है। शक्तिपात के लिए परमात्मा का अनुग्रह अवश्य चाहिए परन्तु इसके लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है बड़े धैर्य से और निरन्तर अभ्यास से।

पतञ्जलि योगसूत्र के आधार पर अष्टांग योग (राजयोग) समझना इस विषय में बहुत सहायक होगा। परन्तु श्रीकृष्ण की भव्य वाणी **'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्'** के अनुसार अत्युत्तम मस्तिष्क शक्ति वाले ज्ञान योगी के लिए उपनिषद् कथित श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन के अभ्यास के लिए गुरु सच्छिष्य से अभिमुख होकर कहने की कृपा करते हैं–

(i) छान्दोग्योपनिषत् का महावाक्य '**तत्त्वमऽसि**'–

यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत्।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव त्वमेव तत् ॥१६॥

जो परब्रह्म सबकी आत्मा है, विश्व को धारण करता है, बारीक से भी अत्यन्त बारीक (सूक्ष्मतम) और सदा रहने वाला (सनातन) है, (हे शिष्य!) वह तुम ही हो–**तत्त्वमऽसि।**

बृहदारण्यकोपनिषत् का महावाक्य–**अहं ब्रह्मास्मि।**

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिप्रपञ्चं यत्प्रकाशते।
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते ॥१७॥

'जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति के व्यवहार को जो प्रकट करता है वह परब्रह्म मैं ही हूँ'–यह जानकर मनुष्य सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है–**अहं ब्रह्मास्मि।**

ऐतरेय उपनिषद् के महावाक्य–**प्रज्ञानं ब्रह्म**–द्वारा साधक का निश्चय कहते हैं–

त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत्।
तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः ॥१८॥

तीनों धामों (जाग्रत् आदि नगरों) में जो भी भोगने योग्य पदार्थ हैं, जो भोग है और जो भोगनेवाला है, उन सब से विलक्षण चैतन्यमात्र साक्षी सदाशिव मैं हूँ–**प्रज्ञानं ब्रह्म।**

अब साक्षात्कार का अनुभव माण्डूक्योपनिषद् के महावाक्य–**अयमात्मा ब्रह्म**–(२) द्वारा गुरु-शिष्य की तादात्म्यरूपता बतलाते हैं–

मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम्॥१९॥

मुझसे ही सब कुछ पैदा होता है, मुझमें ही सब कुछ विराम पाता है और मेरे में ही लय होता है। अतः वह अद्वितीय ब्रह्म मैं ही हूँ—**अयमात्मा ब्रह्म।**

आत्मसाक्षात्कार का अनभुव

अणोरणीयानहमेव तद्वन्-
महानहं विश्वमहं विचित्रम्।
पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो
हिरण्मयोऽहं शिवरूपमस्मि ॥२०॥

मैं छोटे से भी छोटा हूँ और इसी प्रकार बड़े से बड़ा भी हूँ। नानारूपों में प्रकट यह विश्व मैं हूँ। मैं सबसे पुराना हूँ। शरीर-रूप पुर में वास करने वाला पुरुष मैं ही हूँ और सबका शासक मैं ही हूँ। मैं ही प्रकाशरूप (प्रकाश) हूँ और कल्याणरूप (विमर्श) भी मैं ही हूँ।

अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः
पश्याम्यचक्षुः स शृणोम्यकर्णः।
अहं विजानामि विविक्तरूपो
न चास्ति वेत्ता मम चित्सदाऽहम् ॥२१॥

मैं हाथों से रहित और पैरों से रहित (होने पर भी सब जगह समस्त वस्तुओं को ग्रहण करता हूँ और बड़े वेग से इच्छानुसार सर्वत्र गमनागमन करता) हूँ। मेरी शक्ति चिन्तन में बाहर है अर्थात् ध्यान

किए जाने पर भी ध्यान में आनेवाला नहीं हूँ। नेत्रों के बिना होने पर भी मैं सब कुछ देखता हूँ। कानों के बिना होने पर भी सब कुछ सुनता हूँ। मैं बुद्धि आदि अन्तःकरण विषय से विलक्षण हूँ। मुझे कोई जान नहीं सकता क्योंकि मैं सदा चित्स्वरूप ही हूँ।

वेदैरनेकैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।
न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो
न जन्म देहेन्द्रियबुद्धिरस्ति ॥२२॥

वेदों के द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ। मैंने ही वेदान्त अर्थात् उपनिषत्-ज्ञान को प्रकट किया है। वेदों के आशय को भी मैं ही जानता हूँ। मेरे लिए पुण्य तथा पाप नहीं है अर्थात् मैं न किसी का पुण्य लेता हूँ न पाप ही, मेरा किसी प्रकार नाश भी नहीं होता। मेरा न जन्म होता है और देह-इन्द्रिय तथा बुद्धि से कोई वास्ता है।

न भूमिरापो न च वह्निरस्ति
न चानिलो मेऽस्ति न चाम्बरं च।
एवं विदित्वा परमात्मरूपं
गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम् ॥२३॥
समस्तसाक्षिं सदसद्विहीनं
प्रयाति शुद्धं परमात्मरूपम् ॥२४॥

मेरे लिए न पृथ्वी है, न जल न अग्नि न वायु और न आकाश ही (अर्थात् इस सब पाँच भौतिक प्रपञ्च का लयाभ्यास द्वारा उल्लङ्घन करके ही मेरे स्वरूप का अनुभव होता है)।

इस प्रकार परमात्मा परब्रह्म जो हृदय-गुफा में विराजमान है,

कलारहित है और अद्वितीय है; सबका साक्षी तथा सत् और असत् दोनों से परे है, को जानकर मनुष्य उस शुद्ध ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

इति प्रथम खण्ड:॥

यः शतरुद्रीयमधीते सोऽग्निपूतो भवति सुरापानात्पूतो भवति ब्रह्महत्यात्पूतोभवति कृत्याकृत्यात्पूतो भवति तस्मादविमुक्तमाश्रितो भवति। अत्याश्रमी सर्वदा सकृदा जपेत् ॥

जो इस 'शतरुद्रीय' का पाठ करता है वह मानो अग्नि से पवित्र बनता है, सुरापान के पाप से पवित्र होता है, ब्रह्महत्या के दोष से पवित्र बनता है, जान-बूझकर या अनजाने किए दुष्कर्म से पवित्र होता है। इसके पाठ से मनुष्य अविमुक्तेश्वर भगवान् शिव आश्रित होता है जहाँ से जन्म-मरण के चक्र में नहीं पड़ता। जीवन के उच्चस्तर पर चलने वाले मनुष्य को सदा और प्रतिदिन इस उपनिषद् का पाठ करना चाहिए।

अनेन ज्ञानमाप्नोति संसारार्णवनाशनम्।
तस्मादेवं विदित्वैनं कैवल्यं फलमश्नुते ॥
कैवल्यं फलमश्नुत इति ॥

इस उपनिषद्-पाठ से परमेश्वर का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है जो संसार-रूप समुद्र का नाश करता है। अत: ऐसा ज्ञान प्राप्त कर कैवल्य अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है, सचमुच मोक्ष प्राप्त होता है।

इति कैवल्योपनिषत्समाप्ता ॥

अथ ब्राह्मीविद्या

ॐ ॐ ॐ त्रिगुणपुरुष क्षेत्रचर मोहं भिन्धि, रजस्तमसी भिन्धि, प्राकृतपाशजालं सावरणं परिहर, सत्त्वं गृहाण, पुरुषोत्तमोऽसि, सोमसूर्यानलप्रवरपरमधामन्, ब्रह्मविष्णुमहेश्वर-स्वरूप, सृष्टिस्थितिसंहारकारक, भ्रूमध्यनिलय, तेजोऽसि धामासि अमृतात्मन् ॐ तत्सत्। हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषद-तिथिर्दुरोणसत् नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा ऋतं परंब्रह्मस्वरूप सर्वगत सर्वशक्ते सर्वेश्वर सर्वेन्द्रियग्रन्थिभेदं कुरु कुरु परमं पदं परामर्शय परमार्ग ब्रह्मद्वारं सर, कुमार्ग जहि, षाट्कोशिकं शरीरं त्यज, शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि विमलोऽसि, क्षमस्व स्वपदमास्वादयाऽस्वादय स्वाहा। इति॥

ब्राह्मीविद्या

माता-पिता अपनी सन्तान के गुरु होते हैं। सुशील तथा विज्ञ माता-पिता अपनी सन्तान को बचपन से ब्राह्मीविद्या कण्ठस्थ कराते हैं। 'अत्मा वै पुत्रो जायते' (उप०) - पुत्र माता-पिता का ही दूसरा नया रूप होता है। वह अपने माता-पिता को अन्तिम समय पर चेतना देता है कि जो ज्ञान आपने मुझे बचपन से दिया है ऐसा न हो कि इस अन्तिम घड़ी पर आप उसको भूल जाएं। ऋषियों ने वेदों से चयन करके वही चेतना ब्राह्मीविद्या के रूप में बताई है। विज्ञजनों से प्रार्थना

है कि वे इस ब्राह्मीविद्या का शुद्ध भक्ति तथा विचारपूर्वक नित्य पाठ करें:–

ॐ ॐ ॐ	ओम् का तीन बार उच्चारण करने से संसार के तीन दु:खों आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक–का निवारण होता है।
त्रिगुणपुरुष!	हे तीन गुणों (सत्व, रज, तम) में ठहरने वाले पुरुष! (और)
क्षेत्रचर!	शरीर रूप क्षेत्र में फिरने वाले (जीव)!
मोहं	माया के प्रभाव से जो तुम्हें यह मोह (अतस्मिन् तद्बुद्धि मोह:–जो जैसा हो उसको वैसा न समझना ही मोह कहलाता है) अर्थात् अज्ञान हुआ है,
भिन्धि,	उसे परमेश्वर का स्मरण करने से काट डालो।
रजस्तमसी भिन्धि,	रजोगुण और तमोगुण, जो तुम्हें इस संसार से बाँध रहे हैं, उस बन्धन की ग्रन्थियों को काट डालो। (तथा)
प्राकृतपाशजालं सावरणं परिहर	जो तुम इन बन्धनों के जाल और इसके आवरण में फंसे हो उसे फेंक दो।
सत्त्वं ग्रहाण,	शुद्ध सत्व को प्राप्त होने से जो निर्मल तत्त्व का ज्ञान होता है, उसे ग्रहण कर,

पुरुषोतमऽसि;	(क्योंकि) तुम स्वयं तो पुरुषोत्तम अर्थात् शुद्ध आत्म-तत्त्व ही हो,
सोमसूर्यानलप्रवर!	चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि (प्रमेय, प्रमाता और प्रमाण; अपर, पर और परापर; द्वैत, अद्वैत और द्वैताद्वैत), यह तेजोमय रूप तुम्हारे ही हैं।
परम धामन्	(अतः) तुम परम तेज रूप हो,
ब्रह्मविष्णु महेश्वरस्वरूप!	तुम ही ब्रह्मा के रूप से सृष्टि करने वाले हो, तुम ही विष्णु के रूप से पालन
सृष्टिस्थितिसंहारकारक!	करने वाले हो, और तुम ही महेश के रूप से इसे अपने स्वरूप में लय करने वाले हो।
भ्रूमध्यनिलय!	नासिका के ऊपर भौहों के मध्य में तुम्हारे स्वरूप का ध्यान टिकाने से ही अनुभव में आने वाले चित्स्वरूप! (अर्थात् तुम भ्रूमध्य स्थान वाले हो)।
तेजोऽसि,	तुम (स्वयं ही प्रकट हुए) तेज हो,
धामासि,	तुम सबको प्रकाश में लाने वाले हो,
अमृतात्मन्!	तुम अमृत स्वरूप हो।
ॐ	तुम ओम्-रूप हो अर्थात् यह भूः भूवः स्वः, ऋक् यजु साम; जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति रूप जगत् तेरी ही व्याख्या है।

तत्	तुम 'वह' गूढ़ हृदय गुफा में छिपे परब्रह्म हो,
सत्	तुम सबका आधार और तीनों कालों की बाधा से रहित सत्-स्वरूप हो।
हंस:	तुम स्वय-प्रकाश व्यापक ब्रह्म हो,
शुचिषत्	तुम निर्मल स्वरूप अर्थात् शुद्ध स्थान पर (हृदयगुहा में) रहने वाले हो;
वसुरन्तरिक्षसत्	तुम आकाश में रहने वाले वसु हो अर्थात्, आकाश की तरह सर्व चराचर में व्याप्त हो।
होता वेदिषत्	तुम ही अग्नि में आहुति डालने वाले 'होता' हो और तुम ही यज्ञ की वेदी पर ठहरे हुए 'अग्नि' हो।
अतिथिर्दुरोणसत्	तुम ही ग्रहस्थों में अतिथिरूप देवता हो,
नृषत्	मनुष्यों में रहने वाले हो,
वरसत्	देवताओं में वास करने वाले हो
ऋतसत्	सत्यलोक में रहने वाले हो अर्थात् सत्यस्वरूप हो,
व्योमसत्	आकाश में ओत-प्रोत हो,
अब्जा	जल से जो रत्न, शंख, जीवजन्तु और वनस्पति उत्पन्न होते हैं वह सब तुम ही हो,

गोजा	पृथ्वी पर नदी, नाले, पर्वत, वन, खेत, मैदान आदि तुम ही हो,
ऋतजा अद्रिजा	यज्ञ (सत्कर्मों) से और पर्वतों
ऋतं वृहत्	(उच्चविचारों) से उत्पन्न होने वाला तुम सबसे महान् परम सत्य हो।
परब्रह्मस्वरूप!	हे (तत्त्वमऽसि महावाक्य से सद्गुरु द्वारा गम्य) परब्रह्मस्वरूप !
सर्वगत!	हे सब वस्तुओं में व्याप्त वस्तु !
सर्वशक्ते!	हे सर्वशक्तिमान प्रभु !
सर्वेश्वर!	हे सबके स्वामी !
सर्वेन्द्रियग्रन्थिभेदं कुरु कुरु	बस, तुम इन्द्रियों से आसक्ति (लगाव) जल्दी (अभी) छोड़ दो।
परमंपदं परामर्शय	उस परमपद को पाने का उत्तम मार्ग विचारों (परमेश्वर के चिन्तन-ध्यान में लग जा)।
परमार्गब्रह्मद्वारं सर	उस उत्तम मार्ग (मध्यधाम) से ब्रह्मद्वार की ओर चल अर्थात् अपने स्वरूप को पहचान,
कुमार्गं जहि,	अज्ञानरूप उल्टे मार्ग को त्याग,
षाट्कोशिकंशरीरं त्यज,	रोम, रक्त, मांस, हड्डी, वसा और वीर्य से बने हुए इस स्थूल शरीर को छोड़ दे।

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि	(क्योंकि) तुम (वास्तव में) शुद्ध-स्वरूप हो, ज्ञानरूप हो,
विमलोऽसि, क्षमस्व	निर्मल (मायामल रहित) हो, इस योग्य होने के कारण इसका ज़रा विचार कर।
स्वपदमास्वादय	अपने स्वरूप का 'अहं ब्रह्मास्मि' महावाक्य द्वारा अनुभव कर और
आस्वादय स्वाहा	अनुभव करके इस ज्ञान को तू अच्छी तरह स्वीकार कर॥

– इति –

उपनिषत्पाठः

(अध्यात्मयोग)

श्वेतश्वतरोपनिषद्
शान्तिपाठः

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

पूर्णब्रह्म परमात्मन्! आप हम दोनों (गुरु-शिष्य) की साथ-साथ रक्षा करें; हम दोनों का साथ-साथ पालन करें; हम दोनों साथ-साथ ही शक्ति प्राप्त करें; हम दोनों की पढ़ी हुई विद्या तेजोमयी हो; हम दोनों परस्पर द्वेष न करें।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥७॥ ६/६

उस ईश्वरों के भी परम महेश्वर; सम्पूर्ण देवताओं के भी परम देवता; पतियों के भी परम पति (तथा) समस्त ब्रह्माण्ड के स्वामी (एवं) स्तुति करने योग्य उस प्रकाशरूप परमात्मा को (हम लोग)

सबसे परे जानते हैं।

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥८॥

उसके (शरीररूप) कार्य और (अन्तःकरण तथा इन्द्रियरूप) करण नहीं हैं; उससे बड़ा और उसके समान भी (दूसरा) नहीं दीखता, तथा इस परमेश्वर का ज्ञान (ज्ञानशक्ति), बल (इच्छाशक्ति) और क्रिया (क्रियाशक्ति) रूप स्वाभाविक दिव्य शक्तियाँ नाना प्रकार की ही सुनी जाती है।

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके
न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्।
स कारणं करणाधिपाधिपो
न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥९॥

जगत् में कोई भी उस परमात्मा का स्वामी नहीं है; उसका (कोई) शासक भी नहीं है और उसका चिह्न विशेष भी नहीं है। वह सब का परम कारण (तथा) समस्त कारणों के अधिष्ठाताओं का भी अधिपति है। कोई भी न तो इसका जनक है और न स्वामी ही है।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥१०॥

(वह) एक देव ही सब प्राणियों में छिपा हुआ, सर्वव्यापक (और) समस्त प्राणियों का अन्तर्यामी परमात्मा है, (वही) सबके कर्मों का अधिष्ठाता, सम्पूर्ण भूतों का निवासस्थान, सबका साक्षी, चेतनस्वरूप और सबको चेतना प्रदान करने वाला, सर्वथा विशुद्ध (और) गुणातीत भी है।

एको वशी निष्क्रियाणां बहूना-
मेकं बीजं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥११॥

जो अकेला ही बहुत से, वास्तव में, अक्रिय जीवों का शासक है (और) एक प्रकृतिरूप बीज को अनेक रूपों में परिणत कर देता है; उस हृदयस्थित परमेश्वर को जो धीर पुरुष निरन्तर देखते रहते हैं। उन्हीं को सदा रहने वाला परमानन्द प्राप्त होता है, दूसरों को नहीं।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तत् कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥१२॥

जो एक नित्य चेतन (परमात्मा) बहुत से नित्य चेतन आत्माओं के कर्मफलभोग का विधान करता है, उस ज्ञानयोग से और कर्मयोग से प्राप्त करने योग्य कारणरूप परमदेव परमात्मा को जानकर (मनुष्य) समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१३॥

वहाँ न तो सूर्य प्रकाश फैला सकता है, न चन्द्रमा और तारागण का समुदाय ही; और न ये बिजलियाँ ही वहाँ प्रकाशित हो सकती है; फिर यह लौकिक अग्नि तो कैसे प्रकाशित हो सकती है। क्योंकि उसके प्रकाशित होने पर ही (उसी के प्रकाश से) बतलाये हुए सूर्य आदि सब उसके पीछे प्रकाशित होते हैं। उसके प्रकाश से यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है।

एको हꣳसो भुवनस्यास्य मध्ये
स एवाग्निः सलिले संनिविष्टः।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्थः विद्यतेऽयनाय ॥१४॥

इस ब्रह्माण्ड के बीच में (जो) एक प्रकाशस्वरूप परमात्मा (परिपूर्ण) है, वही जल में स्थित अग्नि है। उसे जानकर ही (मनुष्य) मृत्युरूप संसार-समुद्र से सर्वथा पार हो जाता है। दिव्य परमधाम की प्राप्ति के लिए दूसरा मार्ग नहीं है।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तꣳह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥१५॥

जो परमेश्वर निश्चय ही सबसे पहले ब्रह्मा को उत्पन्न करता है और जो निश्चय ही उस ब्रह्मा को समस्त वेदों का ज्ञान प्रदान करता है, उस परमात्मज्ञान विषयक बुद्धि को प्रकट करने वाले

प्रसिद्ध देव परमेश्वर को मैं मोक्ष की इच्छा वाला साधक आश्रयरूप में ग्रहण करता हूँ।

(कृष्णयजुर्वेदीय श्वेताश्वतरोपनिषदतः)

ॐ सह नाववत्विति शम्॥

आरती

ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
भक्तजनों के संकट, क्षण में दूर करें ॥ॐ जय०॥

जो ध्यावे फल पावे, दुःख बिनसे मन का।
सुख-सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का ॥ॐ जय०॥

मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी।
तुम बिन और न दूजा, आस करूँ जिसकी ॥ॐ जय०॥

तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी।
पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी ॥ॐ जय०॥

तुम करुणा के सागर, तुम पालन कर्ता।
मैं सेवक तुम स्वामी, कृपा करो भर्ता ॥ॐ जय०॥

तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति।
किस विधि मिलूँ दयालु, तुम को मैं कुमति ॥ॐ जय०॥

दीनबन्धु दुःखहर्ता, तुम ठाकुर मेरे।
अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ा तेरे ॥ॐ जय०॥

विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा-भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा ॥ॐ जय०॥

(श्री श्रद्धाराम फिल्लोरी 'श्रद्धा')

शिव-शंकर

SHIVA-SHANKARA

मन स्थिर कर मन्त्र पर–
शिव-शंकर शम्भो!

Aim at the stability of mind, and
Chant thou the Lord's name--Shiva-Shankara.

मन शुद्ध बनि साक्षात् ननि–
हनि हनि गटि मंज़ गाश,
सुविचार ब्ययि श्रद्धायि पर–शिव॰

It's purification of mind, that
Ushers unto you Light in darkness.
So, with reflection and un-suspicion.
Chant thou the Lord's name–Shiva-Shankara.

प्रभातस अछ़ मन्दिरस
गंग-ज़ल तन नाविथ
ध्यान-धारणायि मनि मंज़ु सुर–शिव॰

After purifying the body, rise above,
Enter early the shrine–super-concious state.
In meditation and self-absorption--
Chant thou the Lord's name–Shiva-Shankara.

शिव-नाथस गोड दि अशि-ज़ल
शेरि लागुस भाव पोष

मन प्राण वार तुता कर–शिव०

Let thy tears be the ablution to Shiva.

Thy sincerity the offering of flowers,
Negation of mind with vital force—thy worship,
And, chant thou the Lord's name—Shiva-Shankara.

इन्द्रिय नैवेद्य सोम्बराव,
मन-त्रामरि मंज़ थाव,
देह-दीप ज़ालिथ वार पर–शिव०

Collect thy offerings of distracting senses,

Arrange them in the plate of mind,
With body-lamp lit reflecting beyond—
Chant thou the Lord's name—Shiva-Shankara.

वासनायि धूप थव दज़वुन
विज्ञान-दीप प्रज़वुन
व्यज्ञ-पूर्वक व्यज़ना कर–शिव०

Keep the cencer on with incense-thoughts dissolving.

Lit the lamp in subjective observation,
Fanning away distractions carefully,
Chant thou the Lord's name—Shiva-Shankara.

सहस्त्रदल कमल फोलराव
शिव-अनुग्रह यिथ प्राव,
शिव नित सुर चलि ज़यत मर–शिव०

Now blossoms the thousand-petalled `Kamal',

The super-conscious state—the grace divine,
Be established, the wheel stands dispelled thus
By chanting the Lord's name—Shiva-Shankara.

हमारे प्रकाशन

१. **आराधना**–आरात्रिका, पुरुषसूक्त तथा कश्मीरी लीलाओं का संकलन (In press).

२. **भवानीनामसहस्रस्तुतिः**–आङ्गलानुवाद तथा विशद व्याख्या सहित (Rs. 75.00)

३. **पञ्चस्तवी**–आङ्गलानुवाद तथा विशद व्याख्या सहित (Rs. 125.00)

४. **इन्द्राक्षी स्तोत्रम्**–आङ्गलानुवाद तथा टिप्पणी सहित (Rs. 15.00)

५. **श्री रामकृष्ण कथा अमर्यथ**–श्री रामकृष्ण वचनामृत का प्रथम कश्मीरी अनुवाद (Rs. 100.00)

कृपया संपूर्ण पुस्तक सूची के लिए लिखें:

श्री रामकृष्ण आश्रम, शिवालय, करण नगर, श्रीनगर–१९००१०
(कश्मीर) भारत

MUKUNDA MĀLĀ EVAM ANYA STOTRA RATNA (KAIVALYOP ANIṢAD SAHIT) Edited & Translated by Jankinath Kaul "Kamal" and Published by Sri Ramakrishna Ashrama, Srinagar (Kashmir) - 190010

ISBN : 81-900842-0-8

Price : Rs. 25.00